Year 10, Issue 37
Jan.-March, 2013

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE

कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर

वर्ष १० - अंक ३७, जनवरी-मार्च २०१३

तिरंगा

कविता वाचक्नवी

संधि की
पावन धवल रेखा
हमारी शांति का
उद्घोष करती
पर नहीं क्या ज्ञात तुमको
चक्र भी तो
पूर्वजों से
थातियों में ही मिला है,
शीश पर अंगार धरकर
आँख में हैं स्वप्न
धरती की फसल के,
हाथ में
हलधर सम्हाले
चक्र
हरियाली धरा की खोजते हैं,
और है यह चक्र भी वह
ले जिसे अभिमन्यु
जूझा था समर में,
है यही वह चक्र जिसने
क्रूरता के रूप कुत्सित
कंस या शिशुपाल की
ग्रीवा गिराई।
हम सदा से
इन ति- रंगों में
सजाए चक्र
हो निर्वैर
लड़ते हैं अहिंसक,
और सारे शोक, पीड़ा को हराते
लौह-स्तंभों पर
समर के
गीत लिखते,
जय-विजय के
लेख खोदें,
हम
अ- शोकों के
पुरोधा हैं।

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
वन्दे मातरम्	डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी	३
माँ की आवाज़	डॉ. आदर्श बाली	७
चिड़िया और चील	डॉ. सुषम बेदी	८
क्या तुम....	पद्मा लोकूर	
	अनुवाद : डॉ. उषादेवी विजय कोल्हटकर	१४
स्वामी विवेकानन्द	डॉ. रामदास चौधरी	१५
स्वामी विवेकानन्द की मान्यता	स्नेह ठाकुर	१८
अपूर्णा	अलका सिन्हा	१९
मानस - एक पूर्व नियोजित संसार	डॉ. शंभु नाथ	२३
क्यों तू दुःख से वृथा डरे	गुलाब खंडेलवाल	२६
संस्कृति टकराव	स्नेह ठाकुर	२७
मर्द	चित्रा मुद्गल	३२
रेत मैं हूँ जमुन जल तुम	केदार नाथ अग्रवाल	३२
आगे चले चलो	डॉ. वृन्दावन लाल वर्मा	
	प्रस्तुति : जानकी शरण वर्मा	३३
शिक्षा का मूल्य	इला प्रसाद	३५
अनगिन यात्राओं में	विजय सिंह नाहटा	३५
अक्षरों का आकाश	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि	३६
हिन्दी मानसिकता का निर्माण	डॉ. विद्यानिवास मिश्र	३७
आपको दिल अपना....	गिरीश पाण्डे	३९
भारतीय नव-जागरण		
और काशी नागरी प्रचारिणी सभा	डॉ. राकेश कुमार दूबे	४०
भक्त अभिलाषा	रवि मोहन अवस्थी	४४
तिरंगा	कविता वाचक्नवी	१अ
झण्डा ऊँचा रहे हमारा	श्यामलाल गुप्त पार्षद	४४अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :
16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534
वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00
डाक द्वारा By Mail, Canada & USA.....$35.00, Other Countries.....$40.00
Website: http://www.Vasudha1.webs.com
e-mail: sneh.thakore@rogers.com

संपादकीय

हम नव वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं और इसके साथ ही वसुधा अपने दसवें वर्ष में पदार्पण कर रही है; इस हेतु वसुधा अपने सभी साहित्यकारों व पाठकों की आभारी है जिन्होंने हर पग पर उसे उत्साहपूर्वक अग्रसित किया. यह सभी हिन्दी-प्रेमियों की मंगल-कामना का ही प्रतिफलन है जो वसुधा का स्वप्न - हिन्दी का प्रचार-प्रसार, उन्नयन को साकारता प्रदान करता आ रहा है. सपने सँजोना स्वयं में महत्वपूर्ण है क्योंकि स्वप्न ही भविष्य की दिशा निर्धारित करता है. कल्पना के प्रांगण में बीजारोपित इन स्वप्नों का यथार्थ की ठोस धरती पर रचनात्मक, क्रियात्मक रूप से साकार होना, एक बहुत ही महत्वपूर्ण उपलब्धि है जो अपने हितैषियों, स्नेहियों से मिले सहयोग और प्रोत्साहन द्वारा ही संभव है. वसुधा इस दिशा में सौभाग्यशालिनी है और इस हेतु वसुधा सभी को अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती है और कामना करती है कि भविष्य में भी उनका सहयोग और प्रोत्साहन प्राप्त होता रहेगा.

१२ जनवरी को स्वामी विवेकानन्द के जन्म के डेढ़ सौ साल पूरे हो जायेंगे. स्वामी विवेकानन्द जी ने भारतीय समाज को एक ऐसी सोच दी जो देश को संगठित होने और उसमें नव-जीवन का संचार करने में प्रभावी एवं दूरगामी सिद्ध हुई.

श्री जानकी शरण वर्मा ने, जो डॉ. वृन्दावन लाल वर्मा द्वारा निकाले गए 'लोक पथ' के संपादक थे, उनकी प्रथम कविता भेजी है जो आभार सहित इस अंक में प्रकाशित की जा रही है. डॉ. वृन्दावन लाल वर्मा के महान् ऐतिहासिक उपन्यासकार रूप से तो न केवल हिन्दी पाठक वर्ग वरन् कई अन्य भाषाओं के पाठक वर्ग भी परिचित हैं हीं क्योंकि उनके उपन्यासों का दूसरी भाषाओं में अनुवाद किए जा चुके हैं, पर उनके कवि रूप से कदाचित् परिचित न हों. वसुधा उनकी कविता प्रकाशित कर गौरवान्वित हुयी.

पाठकों की स्नेहाभिव्यक्ति से, उनकी सराहना से २०१२ में प्रकाशित मेरे उपन्यास कैकेयी : चेतना-शिखा का दूसरा संस्करण प्रकाशित हो गया है.

कैकेयी : चेतना-शिखा हेतु आयीं मर्मस्पर्शी समीक्षाओं के तारतम्य को इस बार आगे बढ़ाया है श्री जगदीश चंद्र शारदा शास्त्री जो 'हिंदु इन्स्टीच्यूत ऑफ लर्निंग' कैनेडा के संस्थापक और संरक्षक है, एवं श्री रमेश जोशी ने जो भारत के नवभारत टाइम्स से जुड़े हैं तथा अमेरिका से प्रकाशित विश्वा के सम्पादक हैं. उनके प्रशंसात्मक स्वर, व उन बड़े-बड़े साहित्यकारों से तुलना जिन्हें मैं बचपन से ही नमन करती आ रही हूँ, ने अभिभूत कर दिया. हृदय से आभारी हूँ.

माँ सरस्वती की कृपा से इस वर्ष मेरी दो पुस्तकों, 'चिन्तन के धागों में कैकेयी : सन्दर्भ वाल्मीकीय रामायण' शोध-ग्रंथ एवं 'आज का समाज' लेख संग्रह का प्रकाशन हुआ है. अपने पाठकों की आभारी हूँ जिनके प्रोत्साहन से ही लिखने की ऊर्जा प्राप्त होती है.

वसुधा नव-वर्ष में अपने सभी रचनाकारों एवं पाठकों का अभिनन्दन करती है. रचनाकारों ने अपनी अमूल्य रचनाधर्मिता से वसुधा की पठनीयता में चार-चाँद लगाये हैं और पाठकों ने अपनी सराहनीयता से वसुधा में जीवंतता जगाये रखी है. दोनों का समन्वय ही वसुधा की प्रेरणा-शक्ति है, प्राण-शक्ति है. ईश्वर से प्रार्थना है कि यह प्राण-वायु वसुधा में नव-प्राण फूँकती रहे. हिन्दी का वर्चस्व बढ़ता ही रहे.

ठाकुर साहब व मेरी ओर से सभी मित्रों, शुभ-हितैषियों को सपरिवार नव वर्ष हेतु बधाई. ईश्वर से प्रार्थना है कि सभी के लिए नव-वर्ष मंगलमय हो.

सस्नेह,

स्नेह ठाकुर

वन्दे मातरम्

डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

भारतीय संविधान सभा में राष्ट्र-गीत 'वन्दे मातरम्' राष्ट्र के बोध-गीत के रूप में सिद्ध और प्रसिद्ध हो चुका था, राष्ट्र की चेतना में अंकित और प्रस्थापित हो चुका था. वन्दे मातरम् आज भी पुण्यभूमि-मातृभूमि-भारतभूमि के स्तवन का श्रेष्ठ गीत और भारत-भक्ति बीजमंत्र है. मुझे वन्दे मातरम् का प्रत्येक शब्द, इसका संगीत एवं इसकी अनुगूँज दिव्य और अलौकिक लगते हैं. 'वन्दे मातरम्' जन-गण-मन का नायक और विनायक भी है और हमारी अस्मिता एवं स्वतंत्रता का भाग्य-विधाता भी. जन-गण-मन में राष्ट्र का अपूर्ण प्रादेशिक उल्लेख है; किन्तु वह हमारा राष्ट्र-गीत है, अतएव बहस का विषय नहीं है. वन्दे मातरम् में मातृभूमि की गुणवत्ता की समग्रता है, भारत के नागरिकों की मातृभक्ति और राष्ट्रभक्ति में समर्पण की संपूर्णता है. वन्दे मातरम् को लेकर जो विवाद अलगाववादी मानसिकता द्वारा उठाया गया था, उसका समुचित समाधान गुरुदेव ठाकुर रवीन्द्रनाथ ने संतुलित न्याय-दृष्टि से कर दिया था और इसीलिए वन्दे मातरम् के पहले दो चरण राष्ट्रगान के रूप में प्रतिष्ठित हुए. उस समय 'वन्दे मातरम्' के नमस्कार विधि एवं नारे के रूप में निष्कासन का प्रस्ताव भी था, उसे स्पष्टत: अमान्य किया गया. फिर पहले दो चरण, जो सम्मति और सहमति से स्वीकृत हुए, अब अचानक वैकल्पित या स्वैच्छिक कैसे बना दिए गए? पहले दो चरण स्वीकार करते हुए सहमति के आधार पर जो समझौता या समाधान राष्ट्र को मिला, वह उतना ही अनिवार्य है जितना कि जन-गण-मन का गायन एवं राष्ट्र-ध्वज का सम्मान. सब लोग जन-गण-मन भी नहीं गा पाते; किन्तु राष्ट्रगीत, राष्ट्रगान और राष्ट्र-ध्वज के प्रति सम्मान स्वैच्छिक नहीं कहा जा सकता. जैसे जन-गण-मन के लिए हम खड़े होते हैं वैसे ही वन्दे मातरम् के लिए हमें ससम्मान खड़े होना आवश्यक है.

वन्दे मातरम् एक सामान्य कृति नहीं है. इसका एक इतिहास है, इसकी एक भावना है, इस उद्‌गार की एक संस्कृति है, वह प्रेरणा की शुद्ध-प्रबुद्ध गंगा की तरह बहते हुए राष्ट्र की प्रशस्ति है, उसका वागर्थ है. वन्दे मातरम् के जिन पदों पर विवेकसंगत सहमति बन चुकी, जिसमें एक भी शब्द ऐसा नहीं है जिस पर किसी धर्म, पंथ या विचारधारा को कोई आपत्ति हो सकती है, सिवाय उन कुछ लोगों के जिनका पंथ है अलगाववाद और पेशा है कुतर्क और वितंडा या कि जो भारत देश की अवधारणा को ही अस्वीकार करते हैं और जिनको यहाँ की भूमि से, प्रकृति से, नदियों से, पहाड़ों से, मैदानों से फूलों-फलों और मानवता से कोई लगाव नहीं. वन्दे मातरम् के सभी चरण सबके लिए अनिवार्य हों, मैं यह नहीं मानता; क्योंकि हमने किसी एक पंथ का राष्ट्र नहीं बनाया, किसी एक पंथ को राजसिंहासन पर नहीं बैठाया, कट्टर धर्मांधता को हमने समझ-बूझ कर ख़ारिज किया. हिन्दू पूजा-परंपरा में कई नागरिकों की श्रद्धा है, किन्तु आज दुर्गा-पूजा सबके लिए अनिवार्य नहीं है. हम परम सत्ता के विषय में एक ही दृष्टि सब पर नहीं लादते, किन्तु देश-भक्ति और राष्ट्र के प्रतीकों के प्रति सम्मान भारतीय नागरिकता की शर्त है और उसमें कोई ऐतराज़ करे तो मुझे उस व्यक्ति के मानसिक संतुलन एवं नागरिक-निष्ठा पर संदेह होता है. हो सकता है, किसी दिन विश्व सारी राष्ट्रीयता की भौगोलिक सीमाओं एवं प्रादेशिक निष्ठाओं को तिलांजलि दे सके; किन्तु जब तक विश्व में राष्ट्र की संकल्पना क़ायम है, राष्ट्रभक्ति तथा राष्ट्रीय प्रतीकों के प्रति सम्मान भी अनिवार्य ही माना जायेगा. कोई व्यक्ति राष्ट्र गीत या राष्ट्रगान (वन्दे मातरम् के स्वीकृत चरण) गा सके या न गा सके, प्रश्न यह नहीं है. प्रश्न सम्मान की अनिवार्यता का है और इस प्रश्न को

व्यर्थ के असंगत कुतर्कों या किसी स्वयंभू उदारवादी ऊहापोह में उलझाया नहीं जा सकता. भारत के अँग्रेजी मीडिया ने इस संवेदनशील सवाल को अब तक वस्तुत: ठीक से समझा ही नहीं. जाने क्यों, वे वन्दे मातरम् के राष्ट्रीय सहमति से महिमामंडित पदों को बाद के पदों में प्रस्तुत दुर्गा-प्रशस्ति के साथ जोड़कर या 'आनन्द मठ' की कथा से जोड़कर अपनी तथाकथित अप्रासंगिक उदारवादी यात्राओं पर यत्र-तत्र चले जाते हैं. व्यक्ति की, विचार की एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में अपनी समग्र उदारवादी निष्ठाओं के बावजूद मैं वन्दे मातरम् को मज़हबी संकीर्णताओं के गलियारों में छीछालेदार का विषय बनते हुए देखकर व्यथित और विषादग्रस्त होता हूँ. यदि अलगाववादी मानसिकता और वोट बैंक की राजनीति के चलते सरकार वन्दे मातरम् के स्वीकृत पदों को भी वैकल्पित और स्वैच्छिक क़रार देकर इस विवाद से सीधा-सस्ता छुटकारा पाना चाहेगी तो वह भारतीय राष्ट्रभक्ति पर एक निर्मम आघात और निंदनीय तथा दुराशयपूर्ण छल-कपट होगा. किन्तु मैं साथ ही यह भी कहना चाहूँगा कि यद्यपि मुझे सम्पूर्ण वन्दे मातरम् अत्यंत प्रिय है, किन्तु फिर भी मैं मानता हूँ कि वन्दे मातरम् के सारे पद और चरण सब भारतीय नागरिकों के लिए अनिवार्य किए जाएँ तो वह असंवैधानिक होगा. ७ सितम्बर, २००६ को वन्दे मातरम् का शताब्दी दिवस नहीं मानने का कोई कारण नहीं था, फिर भी उस दिन मैंने अपने निजी पूजाघर में सम्पूर्ण वन्दे मातरम् का स्तवन किया; किन्तु मैं प्रत्येक भारतीय नागरिक को अपने निजी पूजाघर में बुलाकर अपने पूजन-अर्चन में शरीक होने के लिए बाध्य नहीं कर सकता. मुझे उस दिन लगा कि जैसे लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने श्रीगणेश को लेकर अस्मिता का और स्वातंत्र्य का अभियान चलाया था वैसे ही बंकिम ने वन्दे मातरम् के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम का शंखनाद किया था. कितना अगाध और विपुल है वह उत्कट एवं सघन भावावेग, जिसमें मातृभूमि भारत को संबोधित करते हुए ऋषितुल्य बंकिम ने देश-प्रेम और स्वाभिमान का महामंत्र हमें दिया और दशप्रहरण धारिणी दुर्गा को भारत माता के उपमेय एवं रूपक के रूप में देखने के परिप्रेक्ष्य में कहा, 'तोमारई प्रतिमा गड़ि मंदिरे-मंदिरे मातरम्.' उसी लय में भारत माता के लिए उन्होंने फिर कहा -

तुमि विद्या तुमि धर्म्म
तुमि हृदि तुमि मर्म्म
त्वं हि प्राणा: शरीरे
बाहुते तुमि मा शक्ति,
हृदय तुमि मा भक्ति,
नमामि कमलां अमलां अतुलाम्
सुजलां सुफलां मातरम्.

और फिर अंतिम चरण में -

श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम्।
धरणीं भरणीं मातरम्।।
।।वन्दे मातरम्।।

मैं वन्दे मातरम् को शाश्वत् भारत का अलौकिक एवं अमर्त्य बोधगीत मानता हूँ. वह एक दिव्य और विलक्षण कलाकृति है. वन्दे मातरम् की पृष्ठभूमि में बंगाल में हो रहे नव-जागरण के सूर्योदय की ज्योति का प्रभामंडल था - वैदिक वाङ्मय की चेतना थी, भारत माता की ओजस्वी और तेजस्वी छवि थी. मुस्लिम लीग की अलगाववादी मानसिकता ने जब प्रतिवाद किया तो कवीन्द्र रवीन्द्र ने भारतीय सहिष्णुता एवं संस्कृति के निकष पर इसका संतुलित, विवेकसंगत एवं न्यायनिष्ठ समाधान भी कर दिया. 'वन्दे मातरम्' जय हिन्द की तरह भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का महामंत्र है, आदिकवि वाल्मीकि के उस सनातन-शाश्वत्-पुरातन सुभाषित का एक अभिनव संस्करण है, जिसमें श्रीराम कहते हैं -

अपि स्वर्णमयी लंका न मे रोचते।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।

वन्दे मातरम् 'अथर्ववेद' के द्वादश मण्डल में पृथ्वीसूत्र नाम से प्रख्यात प्रशस्ति का एक नया स्वरूप है, जिसमें मुक्त-कण्ठ से अस्मिता एवं स्वतंत्रता का अद्भुत उद्घोष है. अँग्रेजी सत्ता से जूझते हुए भारत को वने मातरम् के रूप में एक ब्रह्मास्त्र मिल गया था, जिसका उद्घोष करते हुए कितने देशभक्त सूरमा फाँसी पर झूल गए, जेलों में ठूँस दिए गए और जिसे सुनकर भारतीय अस्मिता एवं स्वाभिमान का पुनर्जागरण हुआ. जब वन्दे मातरम् का मुस्लिम लीगी विरोध हुआ तब गाँधी जी ने कहा था, 'दुर्भाग्य से हम बुरे दिन देख रहे हैं.' आज भी मुझे लगता है, हम फिर से दुर्भाग्य से बुरे दिन देख रहे हैं. गाँधी जी ने जब वन्दे मातरम् का गायन पहली बार सुना तब वे 'रोमांचित' हुए थे और इस गीत पर मोहित हो गए थे. बाद में विरोध और तनाव के समय उनको लगा कि जो विशुद्ध सोना है उसे पीतल क़रार दिया जा रहा है. २२ अगस्त, १९४७ के दिन उन्होंने अपने भाषण में कहा कि 'वन्दे मातरम्' एक धार्मिक नारा कदापि नहीं था. वस्तुत: सच्चाई तो यह है कि 'वन्दे मातरम्' के आरंभिक पदों को कांग्रेस कार्यकारिणी के हिंदु और मुसलमान सदस्यों ने सर्व-सम्मति से स्वीकार किया था. संविधान सभा में जन-गण-मन को प्रथम स्थान देते हुए पं. जवाहरलाल नेहरू ने २५ अगस्त, १९४८ के अपने भाषण में केवल एक ट्यून एवं संगीत के मुद्दों का ही उल्लेख किया था. उन्होंने 'जन-गण-मन' के कुछ शब्दों को अनुपयुक्त माना, किन्तु उसकी धुन की संगीतबद्धता को ही महत्व दिया. उल्लेखनीय है कि उस ऐतिहासिक भाषण में उन्होंने यह बताना भी आवश्यक समझा कि पश्चिम बंगाल के प्रधान (प्रीमियर) एवं उनकी सरकार ने वन्दे मातरम् को ही नेशनल एंथम के रूप में पसंद किया. पं. नेहरू के इस भाषण की अंतिम पंक्तियाँ विशेषत: एवं स्पष्टत: वन्दे मातरम् की श्रेष्ठता को रेखांकित करती हैं -

" 'जन-गण-मन' में कुछ मात्रा की त्रुटियाँ थीं और उसमें कुछ परिवर्तन या बदल करना आवश्यक था. फिर भी, सबसे अहम् बात यह कि ऐसे परिवर्तन में शब्दों की अपेक्षा धुन को ही पसंद करना था, ताकि उसकी धुन बैंड या वाद्यवृंद पर आसानी से बजाई जा सके.

"किन्तु पश्चिम बंगाल के नए मुख्यमंत्री तथा उनकी सरकार ने 'वन्दे मातरम्' को ही अपनी पसंद बताया.

"आज स्थिति यह है - 'जन-गण-मन' और 'वन्दे मातरम्' के बीच एक तरह से विवाद खड़ा होना दुर्भाग्य की बात है. स्पष्टत: निर्विवाद रूप में 'वन्दे मातरम्' भारत का प्रमुख राष्ट्रगीत है और उसके पीछे एक महान् ऐतिहासिक परम्परा भी है. यह गीत हमारे स्वतंत्रता संग्राम के साथ घनिष्ठता से जुड़ा हुआ है और उसका स्थान अन्य कोई गीत नहीं ले सकता. यह गीत उस संघर्ष की भावोत्कटता और प्रखरता तो प्रकट करता है, किन्तु उसकी परिणिति उसमें उतनी प्रकट नहीं होती."

इस प्रश्न पर **अंतिम आधिकारिक निर्देश-आदेश** श्रद्धेय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने पीठासन से दिए गए निर्विवाद निवेदन के रूप में २४ जनवरी, १९५० को मध्य रात्रि से एक घंटे पहले इन शब्दों में दिया -

" 'जन-गण-मन' शब्दों से रचा गया गीत तथा संगीत भारत का राष्ट्रगीत है. इस गीत के शब्दों में आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन करने का सरकार को अधिकार रहेगा. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में ऐतिहासिक भूमिका निभा चुके 'वन्दे मातरम्' को 'जन-गण-मन' के समान स्थान दिया जायेगा और उसकी प्रतिष्ठा भी 'जन-गण-मन' के समान ही रहेगी. मैं समझता हूँ, माननीय सदस्यों को इससे संतोष होगा."

संविधान सभा में दिए गए इस अधिकृत एवं निर्विवाद आदेश के शब्द सुस्पष्ट हैं - वस्तुत: इस निर्णय के बाद वन्दे मातरम् की हैसियत पूरी तरह जन-गण-मन के समकक्ष है, इसका दर्ज़ा कमतर और कनिष्ठ नहीं कहा जा सकता. पीठासीन के इस निर्णय में वन्दे मातरम् गीत को गुरुदेव ठाकुर रवीन्द्रनाथ के परामर्श के आधार पर कुछ पदों तक सीमित नहीं किया गया था, तथापि संदर्भ में वह सीमा सुस्पष्ट है.

वन्दे मातरम् के कुछ पदों को ही गाया हो तब भी मेरे विचार में इसका प्रेरणात्मक संप्रेषण बना रहेगा - वैसे भी और आज भी राष्ट्रगीत 'जन-गण-मन' का संपूर्ण पाठ विस्मृति के किसी निभृत कोने में ही मिल सकता है. सोचता हूँ कि जैसे 'जन-गण-मन' को लेकर कुछ शब्दों के परिवर्तन के लिए व्यवस्था की गई, उसी प्रकार वन्दे मातरम् को सम्पादित किया जा सकता था तो शायद वही सबसे अधिक श्रेयस्कर होता. यद्यपि अब जन-गण-मन पर कोई प्रश्न नहीं उठाया जाना चाहिये, यह आक्षेप भी सर्वथा निर्मूल एवं निराधार है कि वह गीत ब्रिटेन के राजमुकुट एवं बादशाह की अभ्यर्थना में लिखा गया था. उस आक्षेप से क्षुब्ध होकर स्वयं गुरुदेव ने उसका खंडन किया था. किन्तु यह तो सच है कि वन्दे मातरम् में मातृभूमि की स्तुति संपूर्णतः गुणवत्ता पर आधारित है, जबकि जन-गण-मन का भारतीय भूगोल ब्रिटेन द्वारा शासित प्रदेशों तक ही परिसीमित है और इसलिए आधा-अधूरा है, सौराष्ट्र, राजस्थान और केरल जन-गण में नहीं हैं. सिंध राष्ट्रगीत में है, किन्तु भारत में नहीं है. देशी राज्य बिलकुल छूटे हुए हैं. यह सच है कि जन-गण-मन ब्रिटेन द्वारा शासित भारतीय भूगोल तक ही परिसीमित रहा और इसलिए भौगोलिक दृष्टि से आधा-अधूरा ही कहा जायेगा. स्पष्ट है कि सत्ता हस्तांतरण के बाद जिन राज्यों का भारत में विलय हुआ वे जन-गण में छूटे हुए थे; किन्तु तब क्या राजस्थान, सौराष्ट्र इत्यादि दूसरे देशी राज्यों की रियासतों के लोग राष्ट्रगीत को लेकर प्रतिवाद करें और नये राष्ट्रगीत की पेशकश करें? कवीन्द्र रवीन्द्र ने जब जन-गण-मन की रचना की तब उनके समक्ष भारत का एक दूसरा नक्शा था; किन्तु उनकी भावना थी भारत के चिर सारथि का जयघोष करने की. वन्दे मातरम् में भारत-तत्त्व एवं राष्ट्र में मातृ-तत्त्व के दर्शन एवं भारत की प्राकृतिक-सांस्कृतिक गुणवत्ता की प्रशस्ति है, केवल भूगोल की नहीं. जब राष्ट्रगीत के विषय में निर्णय लिया गया तब तक शायद वन्दे मातरम् की संगीत प्रस्तुति के विषय में कुछ निराधार शंकाएँ थीं. तिमिर बरन भट्टाचार्य, जो पाश्चात्य संगीत के भी जानकार थे, उस समय से पूर्व वे वन्दे मातरम् को संचलन गीत की तर्ज़ में संगीत-बद्ध कर चुके थे - जो वाद्यवृंद के लिए उपयुक्त थी. तिमिर बरन बाबू की ध्वनि-मुद्रिका को नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने आज़ाद हिन्द फ़ौज़ के लिए स्वीकार भी किया था. तिमिर बरन भट्टाचार्य एवं सन् १९३८ में मास्टर कृष्णराव की धुन वाद्यवृंद में प्रस्तुत हो चुकी थी - उस ध्वनि-मुद्रिका पर समुचित विचार ही नहीं हुआ, क्योंकि पं. नेहरू जन-गण-मन को राष्ट्रगीत के रूप में प्रतिष्ठित करने का मन पहले ही बना चुके थे. उस समय भी वन्दे मातरम् का पक्ष अनकहा नहीं रहा; किन्तु डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने यह कह कर सांत्वना और शांति का संदेश दिया कि "भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में ऐतिहासिक भूमिका निभा चुके 'वन्दे मातरम्' को 'जन-गण-मन' के समान स्थान दिया जायेगा और उसकी प्रतिष्ठा भी जन-गण-मन के समान ही रहेगी." इस निर्णय के आधार पर जो राष्ट्रीय सहमति का संधि-पत्र लिखा गया, उसके बाद वर्तमान विवाद की मानसिकता में सदाशयता का चिंताजनक अभाव खटकता है. विवाद, जो सुलझाए जा चुके, उनको बार-बार उठाकर सहमत सेक्युलर दृष्टि का विध्वंस करना और सांप्रदायिकता का प्रसार-प्रचार एवं संवर्धन करना हमारी सौमनस्य की संस्कृति पर एक दुर्भावनाग्रस्त आक्रमण है. गायन में अनिवार्यता का प्रश्न नहीं है. प्रश्न है वन्दे मातरम् के समान तथा समकक्ष सम्मान का.

७ सितम्बर, २००६ को शताब्दी दिवस के रूप में मनोनीत करने का निर्णय सर्वथा निराधार था. इस तिथि का वन्दे मातरम् के साथ कोई ऐतिहासिक आधार और सम्बन्ध ही नहीं था. यद्यपि भारत सरकार ने शताब्दी तिथि के बारे में इस विषय पर अपनी भूल स्वीकार कर ली है, किन्तु स्पष्ट है कि ऐसे ऐतिहासिक मामलों में ऐसी लापरवाही एवं भूल-चूक अक्षम्य है और उपहास का विषय है. क्या हमारी सत्ता का पूरा ताम-झाम सांस्कृतिक मामलों में इतना उदासीन, निरपेक्ष और निरक्षर हो गया है कि उसे राष्ट्रीय पंचांग की ख़ोज-ख़बर का सलीका भी विस्मृत हो चुका है? एक पाद टिप्पणी के रूप में यह दुहराना

आवश्यक है कि कवीन्द्र रवीन्द्र ने 'जन-गण-मन' ब्रिटेन के और तत्कालीन भारत के सम्राट जॉर्ज पंचम की अभ्यर्थना में कदापि नहीं लिखा था. यह सच है कि ऐसा आग्रह कविकुलगुरु रवीन्द्र को किया तो गया था, किन्तु जब यह बात उठाई गई तो उन्होंने श्री पुलिन बिहारी सेन को २० नवम्बर, १९३७ को एक पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने लिखा - "सरकार के दरबार में सुप्रतिष्ठित मेरे एक मित्र ने मुझसे विशेष आग्रह किया कि सम्राट का जयगान मैं लिखूँ. मैं चकित रह गया. विस्मय के साथ मन में क्षोभ उफन आया. इसी मनस्ताप की क्षुब्ध एवं प्रबल प्रतिक्रिया के रूप में 'जन-गण-मन अधिनायक' गीत का जन्म हुआ है. (पतन अभ्युदय बंधुर) - पतन एवं अभ्युदय के कारण ऊबड़-खाबड़ बने मार्ग पर युगों-युगों से वेग से चलने वाले यांत्रिकों (युग-युग धावित यंत्री) का जो चिर सारथि है, जो जन-गण का अंतर्यामी तथा मार्गदर्शक एवं पथ-परिचायक है, ऐसे उस भारत भाग्यविधाता का मैंने इस गीत में जयघोष किया है. वह युग-युगांतर का मानव-भाग्य-रथचालक कोई पाँचवाँ, छठा या और कोई जॉर्ज कभी नहीं हो सकता." कवीन्द्र रवीन्द्र का यह स्पष्टीकरण जन-गण-मन को विदेशी राज्य प्रशस्ति के दुर्विनीत अपराध और दोष से सर्वदा मुक्त करता है. यह क्षम्य एवं विस्मरणीय नहीं है कि उसी काँग्रेस अधिवेशन में तीसरे दिन 'युग-युग जियो मेरे पादशाह' गाया गया था. शायद उसी कारण जन-गण=मन के विषय में कई भ्रांतिपूर्ण भ्रम फिर भी बने रहे. इस भ्रम के निवारण के लिए गुरुदेव ने २९ मार्च, १९३९ को श्रीमती सुधा रानी को लिखा, जिसमें उन्होंने प्रतिवाद में अपने क्षोभ को इस प्रकार व्यक्त किया -

"शाश्वत् मानव इतिहास में युग-युग से प्रवास करने वाले पथिकों की रथयात्रा को चिर सारथि के रूप में मैं चौथे या पाँचवें जॉर्ज की स्तुति में गीत लिख दूँगा, इतनी अपरिमित मूढ़ता शायद मुझमें है, ऐसी जिन्हें आशंका हो, उनके प्रश्नों का उत्तर देना मैं अपना अपमान समझता हूँ."

ये तथ्य सद्य: प्रकाशित कई प्रामाणिक पुस्तकों और लेखों में रेखांकित किए गए हैं. आज हमें यह समझने और समझाने की आवश्यकता है कि राष्ट्र की यात्रा में सहमति के पड़ावों को भुला देना या उनका तिरस्कार करना अथवा उनका अनर्गल उत्खनन करना मंदिर-मस्जिद ध्वंस करने के समान ही है. जो समाधान सहमति से माने गए उनको तिलांजलि देकर और अनावश्यक विवाद के मुद्दों को बढ़ावा दे कर राष्ट्र का अहित और अनिष्ट ही होगा, जिसे बंटाधार की संज्ञा देना अधिक उचित होगा.

माँ की आवाज़

(राष्ट्र के लिये शहीद पुत्र कैप्टन नितिन बाली के लिए)

डॉ. आदर्श बाली

एक नन्हीं-सी कली को
अपने लहू से सींचा था मैंने
कहीं भीड़ में खो न जाए
काँटों से तो क्या
फूलों से भी बचाया था मैंने
अपने दामन की ठंडी हवा देकर
सुलाया था उसे
तूफ़ान तो क्या गर्म साँसों से भी
बचाया था उसे
धरती ही नहीं पूरा ब्रह्मांड महके
दिलो-जाँ से ऐसा फूल खिलाया था मैंने.

चिड़िया और चील

डॉ. सुषम बेदी

मम्मी ने पिंजरे का किवाड ख़ोल दिया और इंतजार करने लगी कि चिड़िया वापस पिंजरे में लौट आए... लेकिन चिड़िया लांग जंप भर कर कभी रसोई की अलमारी की छत पर जा बैठती तो कभी खाने की मेज पर। रसोई की खिडक़ी खुली थी मम्मी को डर हुआ कि चिड़िया कहीं बाहर न उड ज़ाएवे पिंजरे के पास हथेली में दाना लिये उसे पुकारने लगीं।

सहसा उन्हें रीढ में झुरझुरी सी महसूस हुई फरफराते पंखों पर ममी को कितनी ही तसवीरें तिरती-सी दिखने लगीं - झालरोंवाली फ्रॉक में इठलाती नन्ही गुडिया, चटक रंगो वाली बिकनी पहने बीच पर गीली रेत में लोटती चिड़िया...हाँ यही तो था उसका नाम। घर पर सब प्यार से उसे चिड़िया बुलाते थे। चिड़िया की तरह तो दाना चुगती थी वह चिड़िया की ही तरह चहचहाती थी....तब पर नहीं निकले थे उसके कि फुर्राकर उड सके....बस डाल से डाल तक फुदका करती थी। हिन्दुस्तान छोडने से पहले इन डालियों की कमी भी नहीं थी लगातार एक गोद से दूसरी गोद...

ममी उसे डॉक्टर बनाना चाहती थीं, डैडी वकील। दोनों खुद भी डॉक्टर थे, डैडी कार्डियोलोजिस्ट और मम्मी रेडियोलोजिस्ट। न पैसों की कमी, न प्रोत्साहन की। ढाई साल की उम्र से ही इस अमरीकी शहर के सबसे बढिया प्राइवेट नर्सरी स्कूल में प्लास्टिक के अक्षरों और नम्बरों को हाथ से महसूसती वह जल्दी ही उन्हें पहचान कर सबको अपनी प्रतिभा से प्रभावित करने लग गई थी। ममी जब भी पास होती, बस यही सवाल पूछतीं - "स्कूल में क्या हुआ... " और स्कूल से लौटने पर... बेबीसिटर क्या सिर्फ उसे टेलीविजन तो नहीं दिखाती रही?

कुछ फुरसत होती तो ममी कहतीं, "अच्छा, वो वाली राईम सुना दो...ट्विन्कल ट्विन्कल लिटल स्टार... "

ममी को खुश करने के लिये चिड़िया दुहराने लगती तो ममी जरूर कहती, "यू विल बी ए स्टार माई चाईल्ड!"

फिर चिड़िया को जैसे कुछ याद आ जाता और वह मचल कर कहती, "विल यू गो टू वर्क टुमारो?"

"यैस आई हैव टू, नहीं तो तुम्हारे स्कूल की फीस कौन देगा?"

"आई डोन्ट वान्ट टू गो टू स्कूल टुमारो !"

"दैट इज इम्पॉसिबल, यू हैव टू गो टू स्कूल ! "

"नो वी गो टू पार्क।"

"संडे, वी गो टू पार्क।"

"नो टुडे।" चिड़िया जिद करती

लेकिन अब तो शाम हो गई अँधेरे में पार्क नहीं जाते।

नर्सरी से किंडरगार्टन और फिर फर्स्ट ग्रेड में पहुँच जाती है चिड़िया एक दिन।

"मॉम, हु डू यू लव मोस्ट ?"

ममी उसे प्यार से दुलारती है, "अपनी चिड़िया को!"

"नो दैट इज रांग मिस बर्गर सेज एवरीवन लव्ज हिमसेल्फ मोस्ट, यू लव योरसेल्फ मोस्ट नॉट मी!" ममी अवाक् उसे देखती रहती हैं।

फिर एक दिन डिपार्टमेन्टल स्टोर से बाहर निकलते ही वह पैसे माँगने लगती है, कोई फटेहाल, बेघर, गरीब इन्सान पैसा माँगता है और चिड़िया उसे देना चाहती है, ममी ने तब डाँट लगा दी थी - "सब झूठमूठ की गरीबी है इस देश में....ड्रग खाकर पडे रहते हैं और फिर आने जाने वालों को तंग करते हैं....रहने दे, कुछ नहीं देना इसको।

चिड़िया बडी हो रही है।

"ममी, कैन आई हैल्प इन द किचन?"

"नहीं, बिटिया वह सब मैं खुद सँभाल लूँगी तू जा पढ....अपना होमवर्क खत्म कर ले, फिर तेरी भरतनाट्यम की भी तो क्लास है आज, उसका अभ्यास भी करना होगा वरना तेरी टीचर गुस्सा करेगी।"

एक बार ममी बीमार पड ज़ाती है। चिड़िया कहती है -" मैं स्कूल नहीं जाऊँगी, घर पर कौन देखभाल करेगा तुम्हारी!"

"जा जा, मेरे बहाने स्कूल मिस करने की कोई ज़रूरत नहीं। ऐसी कोई बीमार नहीं कि मेरे लिये तुम पढाई का हर्ज करो। पढना तुम्हारे लिये सबसे ज्यादा इंपोर्टेन्ट है!"

"बस पढ़ो पढ़ो पढ़ो इससे हटकर तुम कोई बात ही नहीं करतीं।"

"और क्या....इस देश में सफलता की यही कुंजी है। तुमको अपने अमरीकी साथियों से बेहतर ग्रेड्स लाने होंगे। तभी तो तुम बढिया हाई स्कूल फिर आईवी-लीग युनीवर्सिटी में जा सकोगी। एक बार किसी आईवी-लीग युनीवर्सिटी में पहुँच गयीं, तब तो हमेशा के लिये ज़िन्दगी बन गई समझो....तरक्की का हर रास्ता खुल जाता है, तुम....सहसा ममी की कमर में तीखा दर्द उठा और वे बोलते बोलते रुक गयीं। चिड़िया ने ममी के चेहरे पर उभरती दर्द की छाप देखी पर वह रुकी नहीं, उसे स्कूल पहुँचना था।"

उस दिन चिड़िया एक टेलेफोन नंबर रट रही थी ममी ने हैरान होकर पूछा तो वह पूरी कहानी सुनाने लगी, "मॉम, लिंडा के मॉम और डैड ने उसको इतना मारा कि वह मर ही गई....उसके मॉम और डैड को पुलिस पकड कर ले गई...मिस जॉनसन कहती हैं कि ये टेलेफोन नम्बर चाइल्ड एब्यूज हैल्प का है। अगर तुम्हारे मॉम और डैड तुमको मारें तो इस नम्बर पर फोन कर देना...फिर उनको भी पुलिस पकड क़र ले जाएगी। अब तुम मुझ पर गुस्सा करोगी न, तो मैं पुलिस को फोन कर दूंगी...मॉम, लिंडा अब कभी स्कूल नहीं आएगी जब मर जाते हैं तो फिर कभी स्कूल नहीं जाते"

ममी को लगा था उनके हाथ से कुछ बहुत कीमती फिसला जा रहा है....बहुत चाह कर भी जिसे पकडे रखना नामुमकिन हो रहा है। कुछ घर से बाहर भी है जिस पर उनका अपना कोई बस नहीं....क्या ये समाज उनको भी कोई धमकी दे रहा है।

ख़ैर पढ़ते-पढ़ते चिड़िया शहर के नामी हाईस्कूल में भी पहुँच गई. बडी मुश्किल से दाखिला मिलता है इस स्कूल में, हजारों परीक्षा देते हैं, लेकिन दाखिला दो तीन सौ को ही मिलता है. इस स्कूल में प्रतियोगिता से प्रताड़ित उन सैकड़ो छात्रों के बीच चिड़िया कुछ फिसलने लगी। छमाही रिर्पोट कार्ड मिला तो ममी सकते की हालत में थी।

"यह बायोलॉजी में तुझे सी कैसे मिला? "

"आय थिंक, द टीचर डज नॉट लाईक मी! "

ममी उसके टीचर से मिलीं थीं.... बायोलॉजी की क्लास सुबह साढे आठ बजे होती थी टीचर ने ममी से कहा था- "लगता है आपकी बेटी को पूरी नींद नहीं मिलती। मेरी क्लास में कुछ सुस्त और सोयी-सोयी सी दिखती है।"

ममी शाम होते ही चिड़िया के पीछे पड ज़ाती, "टाईम मत वेस्ट कर, जल्दी सोना है। तुझे तो हमने डॉक्टर बनाना है बायोलॉजी में पिछड गयी तो काम कैसे चलेगा?"

"पर ममी मैं जल्दी नहीं सो सकती....इंग्लिश टीचर के लिये आज यह किताब पढकर बुक-रिर्पोट लिखनी है।"

ममी को समझ नहीं आता क्या करे-कहे।

बायोलॉजी में दुबारा कम नम्बर आए तो ममी के हाथ पैर ठण्डे पड गए थे। फिर चिड़िया से सलाह करके एक झूठ गढक़र टीचर को बताया गया था। टेस्टवाले दिन चिड़िया बीमार थी। डर के मारे टेस्ट कर दिया। क्या अब दुबारा ले सकती है? डैड के प्रोत्साहन पर चिड़िया ने स्कूल की स्पीच टीम में भी हिस्सा लिया है वकील के लिये पब्लिक स्पीकिंग बहुत जरूरी होती है न!

आज शाम चिड़िया को कल सुबह होने वाले गणित के इम्तहान की तैयारी करनी है। दोपहर के स्पीच टूर्नामेन्ट के लिये स्पीच को रट्टा लगाना है। रात को एक बजे तक चिड़िया जगी रही। सुबह बायोलोजी के पहले घंटे में वह फिर नींद के झूले ले रही थी।

शाम को डैड ने पूछा था कि स्पीच कैसी रही तो चिड़िया पुरस्कार न जीत पाने के अपराध भाव को एक उदासीनता से ढक कर बोली, "आई डिड नॉट विन।"

"वाय?"

'यूं डैड ने विस्तार से जानने के लिये ऐसा पूछा था....पर चिड़िया का अपराध भाव अब आक्रमण का आकार ले बैठा....भड़क कर बोली, "वैल, यू कान्ट विन ऐवरी टाईम।"

चिड़िया को शान्त करने के लिये डैड पूछ बैठे, "तुम्हारी स्पीच का टॉपिक क्या था?

"आई डोन्ट वान्ट टू रीपीट, यू कैन रीड इट योरसैल्फ।" लिखित भाषण की कॉपी चिड़िया ने डैड को पकडा दी। डैड ने शीर्षक पढ़ा - टीन एज़ सुसाईड्स याने किशोर आत्महत्याएँ। पहला पैराग्राफ इस तरह था कि - 'इस देश में हर साल करीब दस हजार टीन एज़र्स आत्महत्या के शिकार होते हैं जिसकी वजह ड्रग, इन्सिक्योरिटी, डिप्रेशन और अकेलेपन के साथ साथ, खासकर आप्रवासियों के बीच इसकी वजह किशोरों पर उनके माँ-बाप द्वारा बढता हुआ दबाव है। आप्रवासी माँ-बाप अपनी ख्वाहिशों अधूरे सपनों को अपनी औलाद द्वारा पूरा करवाने के लिये इन किशोरों को बदहवास घोड़ों की तरह मार मार कर चलवाए रखना चाहते हैं जिसका परिणाम बहुत भीषण होता है।

भौंचक्के भाव से डैड ने बार बार वे पंक्तियाँ पढ़ीं। उनको विश्वास ही नहीं हो पा रहा था कि जो वे पढ़ रहे हैं, वह कुछ घण्टे पहले उनकी बेटी एक भाषण में कह चुकी है। सहसा वे जोर से फटकारने लगे।

"यह सब क्या बकवास लिखी है?"

अब की चिड़िया शान्त रही।

"बकवास नहीं, डैड....यूँ भी इस स्पीच के तथ्य एक जाने माने शोधकर्ता के हैं। स्कूल में यूँ सबको स्पीच पसंद आयी थी। सहसा डैड एकदम चुप हो गए। थोडी देर बाद पता नहीं क्या सोचते-सोचते बोले - "क्या तुमको ऐसा लगता है कि हम तुम पर प्रेशर डाल रहे हैं?"

"कभी-कभी....पर यह मेरे अपने बारे में तो नहीं यह तो...."

"ख़ैर, अब मैं तुझे कुछ नहीं कहूँगा।" लेकिन ममी को डैड के इस रुख पर गुस्सा आ गया था - "रहने दो, तुम तो फालतू में घबरा जाते हो! हम ऐसे तो डाक्टर नहीं बन गए। दिन रात पढते थे। घर के काम भी करते थे। इससे तो मैं कुछ भी कराती ही नहीं। कम से कम पढ़कर अपने आप में कुछ बन जाना तो इसका फर्ज़ है। हम अपने फ़ायदे की बात थोड़े ही करते हैं। देखो, भरतनाट्यम भी छूट गया इसका....किसी भी काम के लिये वक्त नहीं है....तो वक्त है किसलिये? ज़्यादा ही दिमाग बिगाड देते हैं यहाँ बच्चों का....माँ बाप न हुए मानो दुश्मन हों बच्चों के....फ़ालतू में माँ बाप में भी गिल्ट।"

मन ही मन ममी डर गयी थीं जैसे कोई उन्हें कोई धमकी दे रहा हो। लेकिन भूमिकाएँ अदला-बदली हो रही थीं। ममी डैडी कुछ भी चिड़िया का नापसंद करते तो वह भडक़ जाती - "काम डाउन, आई विल डू एट माय ओन पसंद।" बडी तेजी से ममी डैडी उसकी ज़िन्दगी में फालतू और बेकार की चीज़ होते जा रहे थे। उसे ममी डैडी की बातें, उनके अनुभव अपने संदर्भ में एकदम इररैलेवेन्ट लगने लगे....उनमें एक और जीवन शैली, एक और संस्कृति की बू थी जिसे चिड़िया अपने लिये बहुत पिछडा और हानिप्रद भी समझने लग गयी थी। ममी डैडी के ख़िलाफ़ बोलते हुए उसकी आवाज़ में एक मसीहापन होता, जैसे कि दुनिया भर के माँ-बापों के खिलाफ आंदोलन में वह किशोरों का नेतृत्व कर रही हो। उसे विश्वास हो गया था कि उसके अपने और ज़्यादातर माँ-बाप बातें प्रजातन्त्र की करते हैं पर होते तानाशाह हैं।

चिड़िया आईवी लीग तो नहीं पर एक अच्छे कॉलेज में दाखिला पा गई थी होड यहाँ भी कम नहीं थी। उधर अब चिड़िया के पर भी तो निकलने लगे थे। वह उडना चाहती थी। घरौंदे से बाहर खुली हवा पर तैरना चाहती थी....एक सहपाठी उसे अपनी ओर खींच रहा था। हवाओं पर साथ साथ तैरने का आमंत्रण।

उसने सहपाठी से कहा, "ममी को लडक़ों से दोस्ती पसंद नहीं।"

सहपाठी बोला, "ममी को कुछ बतलाने की जरूरत ही क्या है?"

"लेकिन ममी को यूँ मैं सब कुछ...."

उसने बात काट कर पूछा, "कितने साल की हो?"

"अठारह।"

"तो तुम वयस्क हो। अब ममी की जेल से रिहा हो जाओ।"

लेकिन वह अभी भी घबरा रही थी।

सहपाठी बोला, "किसकी ज़िन्दगी है यह?"

"मेरी।"

"तो ममी ने जीना है या तुमने? "

घर पर चिड़िया ने कहा, "मैं बोर्डिंग में रहना चाहती हूँ।"

"क्यों?"

"इंडिपेन्डेन्टली रहूँगी।"

"अभी से ऐसी बात....पढाई खत्म कर ले, फिर शादी के बाद तो हमसे अलग रहना ही है।"

"लेकिन घर पर पढाई ठीक से नहीं होती।"

"यहाँ घर पर भला कौन तुझे डिस्टर्ब करता है?"

"क्या तुम समझ पाओगी कि अकेले रहने की भी एक ज़रूरत होती है कि मां बाप के साथ रह कर बच्चे का पूरा विकास नहीं होता। तुम्हारा जमाना, तुम्हारा देश बहुत फर्क था....क्या तुम्हें भरोसा नहीं होता कि मेरी दुनिया तुमसे बहुत अलग हो सकती है।"

ममी नहीं मानी। चिड़िया और ममी में आए दिन किच किच होती। चिड़िया की सहनशक्ति खत्म हो रही थी - "आई डोन्ट अण्डरस्टैन्ड आय एम एन एडल्ट नाओ, तुम लोग मनमर्जी से क्यों नहीं रहने देते!"

"जब ख़ुद कमाने लगोगी तो रह लेना मनमर्जी से, कुछ ज़्यादा ही पर निकल आए हैं।"

"मेरे कॉलेज की फीस देती हो। मुझे खाने-पहनने को देती हो, इतना ही रौब है।"

ममी को जैसे लकवा मार गया हो, "कैसे कह गई तू ये बात....बस यही नाता है तेरा हमारा! बस इसीलिये टिकी है तू यहाँ कि और कोई तेरे कॉलेज की फीस नहीं भरेगा! हमारा प्यार हमारी कद्र हमारे साथ रहना अब गुलामी लगती है तुझे!"

अचानक चिड़िया डर गई....ये तो बतंगड बन गया। ममी को नाराज़ करके वह जाएगी कहाँ? अभी तो उसके परों में उडने की पूरी ताकत कहाँ है? "सॉरी मॉम! आई डिड नॉट मीन टू हर्ट यू, आई लव यू।"

और ममी के जिगरे में फिर से वात्सल्य का दरिया बह निकला। "देख बिटिया हम जो कहते हैं, वह तेरे भले के लिये ही, पहले पढ़-लिख कर अपने पैरों पर खडी हो जा, फिर...."

"बस मॉम, हो गया न भाषण शुरु। जब भी मैं तुमको आई लव यू कहती हूँ, तुम इतनी इंसपायर्ड हो जाती हो कि बस कभी न रुकने वाली स्पीच रेन शुरु हो जाती है।"

"चल चल, मज़ाक करना ज़्यादा ही सीख गई है।" ममी बनावटी गुस्से से कहती हैं।

और उस शाम चिड़िया के लिये खास पकवान बनते हैं। उसका पॉकेट अलाउंस बढा दिया जाता है और ममी उसे नया ड्रेस खरीदवाने ब्लूमिंगडेल्ज ले जाती हैं। चिड़िया ने जब सारा किस्सा अपने सहपाठी से कहा तो वह बोला - "तुम्हारी ममी बहुत लोनली और इनसिक्योर हैं तुमको खोने से डरती हैं। इसी से तुम्हें तरह तरह की रिश्वत देकर अपने पास रखना चाहती हैं।"

"तुम्हारा मतलब?"

"देखो, माँ-बाप का भी अपना स्वार्थ होता है। वे अपना पजेशन खोना नहीं चाहते। इसलिये हर तरीके से बच्चों, एडल्ट बच्चों को भी अपने कब्जे में रखने की कोशिश रहती है उनकी। अभी यह आसान भी है क्योंकि तुम उन पर पूरी तरह से डिपेन्डेन्ट हो।"

चिड़िया आत्मदया से भर उठी, कैसी एग्जिस्टेंस है हमारी कि अपने सरवाईवल तक के लिये दूसरों का मुँह जोहना पड़ता है। मेरा उस घर में कतई मन नहीं लगता, पर कहीं और रहने का ठिकाना भी तो नहीं। पता नहीं कब छुटकारा होगा।"

"हम दोनों अगर नौकरी कर लें तो कोई छोटी-सी जगह किराए पर लेकर साथ रह सकते हैं।"

"और पढाई?"

"पढाई साथ-साथ चलती रहेगी।"

और चिड़िया अपने घरौंदे से उडक़र आ गई। एक छोटी सी नौकरी कर ली। डॉक्टर वकील बनने के सपने तो यूँ भी उसने नहीं उसके मॉम-डैड ने देखे थे। ख़ुद वह ऐसा कुछ करना चाहती थी जिससे एकदम मशहूर हो जाए पर अभी उसके दिमाग में साफ नहीं था कि क्या करने से वह फटाफट नाम और शोहरत पा सकती है। कभी कभी वह फिल्म बनाने की सोचती....पर अभी न पैसा था न ट्रेनिंग, न ही स्पष्ट विचार या विषय....लेकिन महत्वाकांक्षा थी, और दम था....भीतर एक अकुलाहट-सी बनी रहती....उसका सहपाठी सादा ज़िंदगी जीने में विश्वास रखता था....एकदम मिनीमलिस्ट....कम से कम चीज़ों के साथ गुज़ारा करना....मिट्टी से जुड़ी ज़िंदगी की ओर लौटना....लेकिन इस नयी आत्मनिर्भर ज़िंदगी का अपना ही सुख था। चिड़िया पूरी तरह से अपनी नयी दुनिया में मस्त हो गयी। हर दिन आर्ट, हिस्ट्री के नये नये कोर्स की किताबें पढते हुए, नये नये लोगों से मिलते, नये घर का दायित्व निभाते हुए वह मॉम-डैड को भूल-सी गयी। कम से कम नये जीवन में उसे कहीं भी उनका संदर्भ नहीं दीखा।

एक बार ममी बहुत बीमार हो गयीं थीं....उनका ऑपरेशन होना था। डैड का फोन आया था, पर चिड़िया को बहुत पढाई करनी थी। तब ममी ने हिन्दुस्तान से मौसी को बुलवाया था अपनी देखभाल के लिये। मौसी ने दिन रात ममी की तीमारदारी में लगा दिया था पर चिड़िया के रुख से वे बहुत ख़फ़ा थीं। वे ममी से कहतीं - "तुम तो अपनी बेटी से डरती हो, कुछ कहती ही नहीं। मेरी बेटी इस तरह करे तो उसकी टाँगे तोड़ कर न धर दूँ....इतनी आज़ादी आख़िर क्यों? कुछ मक़सद भी तो होना चाहिये न।" ममी सुनती रहतीं और मौसी कहती जातीं।

"दरअसल तुमको बच्चे पालना आता ही नहीं....यहाँ आज़ादी के बोल बोले, उसकी चर्चा और नारों से इतना आतंकित हो जाते हो कि बच्चों को अनुशासित भी नहीं करते....तभी ये बच्चे न हिन्दुस्तानी रह पाते हैं न अमरीकी।"

ममी नीरीह भाव से कहती, "जवानी का जोश है....मेरी बात तो सुनती ही नहीं।"

मौसी को और भी तरह मिल जाती, "वह कौनसा जानवर होता है - हाँ, सर्पिणी अपने अण्डों को ख़ुद खा जाती है न....पर कभी सुना है ऐसा शिशु जो अपने पैदा करने वाले को खा डाले!"

"यह कैसी बात कह रही हो तुम....चिड़िया भोली है....उम्र के साथ माँ-बाप के दिल को समझने, पहचानने लगेगी।"

"और नहीं तो अपने उसी सहपाठी के साथ शादी कर ले जिसके साथ रह रही है। कम से कम तुम्हारी तो मुक्ति हो।"

उधर कई सालों तक चलने वाले अस्थायी रैनबसेरे में अब चिड़िया की सहपाठी से नोकझौंक होने लगी। तंगी की उस ज़िन्दगी से चिड़िया तंग आने लगी थी। दोनों एक दूसरे से कुछ ऊबने लगे। शादी की बात उठी तो सहपाठी बोला - "आई बिलीव इन कमिटमेन्ट ऑफ हार्ट्स....शादी तो आदमी तब करे जबकि सामाजिक स्वीकृति कुछ मायने रखती हो।"

"जल्द ही उसके दिल की कमिट्मेन्ट किसी और से हो गयी।"

मौसी के बहुत समझाने पर ममी-डैडी चिड़िया को छुट्टी मनाने के बहाने हिन्दुस्तान ले गये, वहाँ उसे शादी लायक कई लडक़े दिखाए गये। चिड़िया ने ममी से कहा -"ये कैसा खिलवाड क़र रहे हो तुम लोग....जिसे न जानती न बूझती, उसके साथ ज़िन्दगी बिताऊँगी! क्या बेवकूफ समझ रखा है तुमने मुझे....यह नहीं होगा।"

अमरीका लौट कर चिड़िया को नये सिरे से घोंसला खोजना था। अपनी छोटी सी तनख्वाह में कोठरी का किराया, खाना पीना और दूसरे खर्च नहीं चला सकती थी। पहले सहपाठी के साथ सब कुछ शेयर करती थी....अकेले बूते मुश्किल था। दूसरे सहसा सहपाठी से अलग होकर उसने यह भी महसूस किया कि वह ख़ामखाह अपने आप को मॉम-डैड के घर के वैभवपूर्ण माहौल से वंचित कर रही थी....अकेले रहने से उसका स्तर बहुत ज़्यादा गिर जाता था....ऐसी हालत में तो उसकी महत्वाकांक्षा, उसका फ़िल्म बनाने का सपना कभी भी पूरा न होगा।

और चिड़िया अपना तिनका भर सामान लेकर ममी-डैडी के घर आ गयी....हमेशा की तरह ममी ने अपना सब कुछ उसके लिये बिछा दिया था। चिड़िया को दिनों बाद बहुत चैन और राहत मिली। लेकिन घर में बहुत जल्द ही तनाव शुरु हो गये। दरअसल चिड़िया वहाँ रहते हुए भी रह नहीं रही थी। बस रैन भर के बसेरे की ही बात थी। और अगर दिन में घर पर होती भी तो कमरा बंद किये पड़ी रहती। ममी के मिलने वाले आते तो लाख मिन्नत करने पर बड़ी मुश्किल से वह उन्हें हैलो करने बाहर आती, फिर मिनट भर में वापस लौट किवाड़ बंद कर लेती। ज़्यादातर उसे खाने की भूख नहीं होती थी, शायद डायटिंग के चक्कर में, या फिर घर वालों से बचने का बहाना होता। ममी अब उसे घर में रखने की बजाय घर से निकालने के चक्कर में थीं। दिन-रात एक ही सवाल - "तू शादी क्यों नहीं करती? "

चिड़िया सोचती है वह ममी डैडी की अकेली सन्तान है....इस घर पर उसी का हक है...अगर वह यहीं रहती रहे तो गलत क्या है!

मौसी का दूसरा चक्कर लगा तो फिर ममी से कहने लगीं, "बहुत बिगाड़ा हुआ है, तुमने लड़की को....तीस से तो ऊपर हो गयी शादी कब करेगी?"

चिड़िया बिगड उठती है, "आपकी आँखों में मैं भला क्यों खटकती हूँ? आख़िर मेरा घर है....शादी करूँ या न....जब तक चाहूँगी, यहीं रहूँगी....आखिर मेरे माँ-बाप हैं, आपको क्या!"

मौसी भी गुस्से में बोली, "बडे स्वार्थी बच्चे हैं आजकल के! माँ-बाप पर अपने हक़ को तो खूब समझते हैं, पर उनके लिये करने का कोई भाव नहीं....बस जब मन आया चले आये, इस्तेमाल किया और फिर उड़ गए अपने ठिकाने को....कम से कम माँ-बाप की ख़ुशी के लिये ही शादी कर लो।"

अब के ममी बीच में बोल पडती हैं, "रहने दो शीला! आख़िर बच्ची है....इसके घर आ जाने से रौनक आ जाती है वरना ज़िन्दगी में अब ज़्यादा है ही क्या!"

लेकिन उस रौनक के बीच अन्दर ही अन्दर ममी को कुछ सालता रहता है....बत्तीस बरस की लडक़ी के घर लौटने पर वह ख़ुश होये या रोये....वह यह भी जानती है कि चिड़िया किसी भी पल उडने की फिराक में है....यह घर उसके लिये ऐसी सराय है जिसने उसे मुफ़्त पनाह दी हुई है....क्या सच में ममी का इस्तेमाल किया जा रहा है? चिड़िया को तो इस घर में किसी से कोई सरोकार नहीं....सुबह-सुबह काम पर निकल जाती है और देर रात गए घर लौटती है....पता नहीं मौसी के कहे का बुरा मान गई या क्या....अब तो किसी दोस्त या रिश्तेदार के आने पर हैलो कहने अपने कमरे से नीचे तक नहीं उतरती। घर सच में सराय था।

फिर ममी सोचती है....सारी उम्र तो उसने चिड़िया को कोई जिम्मेदारी नहीं दी....सिर्फ लाड़-प्यार दिया, अब भला वह ज़िम्मेदारी निभाने के काबिल कैसे हो? कभी दूसरों के लिये कुछ करने को कहा, सिखाया नहीं....तब चिड़िया कैसे जाने.... और उदास मन से ममी ने मान लिया कुसूर उन्हीं का है।

अब चिड़िया को दाने पानी की या आशियाने की फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं थी, सारी सुख सुविधाएँ मुहैय्या थीं....अगर इनकी एवज़ में कभी ममी का उपदेश सुनना पड ज़ाता तो वह कानों में वाकमैन के इयर प्लग खोंसकर पॉप संगीत सुनने लग जाती।

अब वह फिर फिल्म बनाने के सपने देखने लगी....नौकरी से अब कुछ पैसा बच रहा था, पर वह काफी नहीं था....और फिर ममी-डैडी का पैसा भी तो आख़िर उनकी चिड़िया का ही है।

उसने ममी से कहा, "मैं फिल्म बनाना चाहती हूँ....पैसा लगाओगी?"

तो चिड़िया को अभी भी ममी पापा के सहारे की ज़रूरत थी! क्या ममी की परवरिश ने ही इतना कमज़ोर बना दिया था कि चिड़िया अधूरी-सी फुदकन भर फिर से माँ के घोंसले में आ गिरी है? क्या अभी उड़ना नहीं सीखा उसने? कभी सीख पाएगी? जब पर निकलने को हुए थे, तभी क्या ठीक से उडने देना चाहिये था....कहाँ, क्या गलत हो गया उनसे....चिड़िया की बाँहो से जैसे नये पंख निकालना चाहते हुए ममी ने कहा, "तू जो चाहती है कर....बस अपने पैरों पर खड़ी हो जा....तेरे होने से घर में सब कुछ चहक उठा है....पर दूर पहाडों से, हवाओं से और फिर बादलों से फिसलकर आती चहचहाहट शायद कहीं ज़्यादा मीठी सुनाई पडती है....चिड़िया तो स्वच्छंद आकाश में उड़ती हुई ही सबसे प्यारी और मोहक लगती है।"

चिड़िया अभी ममी की पूरी बात समझ भी नहीं पाई थी कि अचानक ममी को कुछ ध्यान हो आया और वह बोलीं, "तेरे डैडी नाराज तो नहीं होंगे....कहते हैं उसे मन माँगा देकर बिगाड रही हो।"

चिड़िया कड़की, ठीक है रखलो सँभाल कर....चिता पर धर कर साथ ले जाना, जीते जी मुझे डिप्राईव करके सुख मिलता है तो लो....मैं भी तुम दोनों के मरने का इंतजार कर लूँगी....माँ-बाप भी पता नहीं किस बात के बदले लेते रहते हैं....ट्रस्ट को पैसा देंगे अपनी औलाद को नहीं....पैदा करने का यह मतलब तो नहीं कि सारी उम्र उन्हें दबोच कर कोख में ही रख लिया जाये।"

सहसा ममी ने देखा....चिड़िया वहाँ नहीं थी। शायद रसोई की खिडक़ी से बाहर चली गयी थी। ममी घबरा कर बाहर की ओर दौडीं....बाहर सिर्फ़ एक बडी चील आसमान को गिरफ़्तार किये हुए थी....ममी बदहवास चिड़िया को खोजने लगीं। चिड़िया कहीं नहीं थी....अचानक ममी को लगा उन्हें कुछ भ्रम-सा हो रहा है....शायद कोई चील वहाँ नहीं थी, या शायद चील चिड़िया को उगल दे और आसमान पर आँखें टिकाए वह चिड़िया के लौटने का इंतजार करने लगीं।

क्या तुम.... **(मराठी कविता)**

पद्मा लोकूर

अनुवाद : डॉ. उषादेवी विजय कोल्हटकर

क्या तुम अपने आपको
आकाश समझने लगे हो!
मैं कहती हूँ इसलिए....
एकदूसरे ने एकदूसरे को
कितना ही महान् क्यों न माना
आख़िर में जड़ें तो हैं
मिट्टी में ही....
परन्तु तुम आकाश ही रहना
नहीं तो....
आँखें उठाकर देखूँगी
किसकी ओर!....

स्वामी विवेकानंद

डॉ रामदास चौधरी

सोमवार ११ सितम्बर, १८९३ का दिन। स्थान शिकागो, संयुक्त राज्य अमेरिका। अवसर - सर्व धर्म सम्मेलन, जिसमें देश-विदेश से आये विभिन्न धर्मों के ६० प्रतिनिधि, ५००० हजार श्रोतागण और जिसकी तैयारी में २ साल का समय लगा था। इन प्रतिनिधियों के बीच गेरुए वस्त्र पहने, एक अपरिचित तेजस्वी नवयुवक, जिसे संयोगवश ही हिन्दू धर्म का प्रतिनिधि बनने का अवसर मिला था। जब मध्यान्ह के बाद उसे बोलने का अवसर मिला तो सम्बोधन के शब्द, 'अमेरिका के भाइयों और बहनों' पूरे भी न हो पाये थे, सहस्त्रों श्रोताओं ने खड़ होकर उसका उल्लासपूर्वक स्वागत किया। फिर उस नवयुवक ने 'धर्मों में सबसे पुरातन, वैदिक सन्यासी समाज की ओर से राष्ट्रों में नवीनतम राष्ट्र - संयुक्त राष्ट्र अमेरिका - का अभिनन्दन किया और हिन्दू धर्म को सब धर्मों के उदगम के रूप में प्रस्तुत किया, जिस की शिक्षा है, एक दूसरे को समझो और स्वीकारो।' पूरा भाषण केवल तीन मिनट का था, लेकिन सम्मेलन के पहले दिन से लेकर समाप्ति तक वे अमेरिका के समाचार पत्रों में सर्वाधिक चर्चित व्यक्ति बन गए।

यह था स्वामी विवेकानंद का प्रथम विश्व परिचय। स्वामी जी से पहले सभी वक्ताओं ने अपने तैयार किये हुए व्याख्यानों में अपने धर्म या सम्प्रदाय-विशेष के ईश्वर की महत्ता का बखान किया था और उस ईश्वर को अन्य धर्मों के ईश्वर से श्रेष्ठ बताया था। स्वामी जी का ईश्वर सब धर्मों का ईश्वर था जिसका निरूपण वेदों में यह कह कर किया गया था, 'एक सद्विप्राः बहुधा वदन्ति'।

आगामी १७ दिनों में स्वामी जी को दस-बारह बार बोलने का अवसर मिला और हर बार उन्होंने वैदिक धर्म की सार्वभौमिकता का तर्कसंगत और वैज्ञानिक निरूपण किया, धार्मिक सहिष्णुता, समन्वय और उनके द्वारा शांति स्थापना पर जोर दिया। स्वामी जी के व्याख्यानों से पश्चिमी समाज में, वेदान्त एक धूमिल अवस्था से उठ कर प्रकाश में आया। भारत जो विदेशियों की दृष्टि में ग़रीबी, लाचारी और गुलामी का पर्याय था, आध्यात्म की जन्मभूमि के नाम से परिचित हुआ।

प्रारम्भिक जीवन एवं युगीन परिस्थितियाँ : नरेन्द्रनाथ दत्त (नरेन) का जन्म १२ जनवरी सन १८६३ को एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। पिता - विश्वनाथ दत्त एक प्रतिष्ठित बैरिस्टर थे - स्वछन्द प्रकृति के और शान-शौकत से रहने वाले। वे फ़ारसी और अँग्रेज़ी में पारंगत, पाश्चात्य सभ्यता के समर्थक, हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के आलोचक थे। माता भुवनेश्वरी देवी, शालीन प्रकृति की थीं एवं सनातन धर्म में पूरी तरह से आस्थावान थीं। नरेन के पितामह दुर्गाचरण दत्त भी सम्पन्न परिवार से थे और २५ वर्ष की आयु में पत्नी, परिवार, धन और प्रतिष्ठा त्याग कर सन्यासी हो गये थे। नरेन की आकृति पितामह से काफी मिलती थी। यही नरेन कालान्तर में स्वामी विवेकानंद के नाम से विख्यात हुए।

नरेन बाल्यावस्था से ही मेधावी और बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न थे। किशोरावस्था से ही कसरत, कुश्ती घुड़ सवारी और तैराकी में दक्ष थे। नवयुवक होने पर उनका शरीर सुन्दर, बलिष्ठ और ओजपूर्ण हो गया था। संगीत में प्रवीण, अच्छे गीतकार और दर्शन में समानाधिकार; तीव्र जिज्ञासा इनके स्वाभाव के अंग थे और जब तक इनकी शंकाओं का समाधान न हो जाता था, वे किसी बात को नहीं मानते थे। यूरोपियन साहित्य, विशेषतः स्टुअर्ट मिल की कृति, 'एसेज़ ऑन रिलीजन', जर्मन दार्शनिक हीगल के द्वन्द्ववाद का उनके ऊपर गहरा असर पड़ा था।

समकालीन भारत में अँग्रेजी सत्ता की जड़ें गहरी हो रही थीं, साथ ही साथ पाश्चात्य समाज दर्शन तथा ईसाई धर्म का प्रचार भी शीघ्रता से हो रहा था। सैकड़ों वर्षों की पराधीनता के फलस्वरूप हिन्दू धर्म में अनेक कुरीतियाँ और धमन्धिता व्याप्त हो गई थी। ईसाई मिशनरियों ने इन बुराइयों का प्रचार, बढ़ा-चढ़ाकर, न केवल भारत में किया था बल्कि यूरोप और अमेरिका में भी। शासन वर्ग परोक्ष एवं प्रत्यक्ष रूप से उनका सहायक था जो कुछ भारतीयों को ईसाई बनाने में सहायक हआ।

विदेशी सत्ता ने देश का भयंकर शोषण किया, और भारतीय सम्पत्ति देश के बाहर गई। इसके फलस्वरूप पाश्चात्य देशों में वैज्ञानिक और औद्योगिक क्रांति को बढ़ावा मिला, वहाँ जन साधारण के रहन-सहन में अभूतपूर्व समृद्धि आई जब कि अधिकांश भारतीय इससे वंचित ही नहीं रहे, उनकी सभी दिशाओ में अवनति भी हुई। विदेशी सत्ता के कुछ लाभ भी हुए - भारत में पाश्चात्य विज्ञान तथा

साहित्य का प्रवेश हुआ, कतिपय विदेशी विद्वानों के प्रयत्न से प्राचीन भारत का गौरवमय इतिहास, वैज्ञानिक उपलब्धियाँ, तथा साहित्य फिर से प्रकाश में आया और इनसे प्रेरणा पाकर हिन्दू समाज पुनर्जागरण और पुनरुत्थान के पथ पर अग्रसर हुआ। इस जागृति के फलस्वरूप बंगाल में ब्रह्मसमाज, महाराष्ट्र में प्रार्थनासमाज, तथा उत्तर भारत में आर्यसमाज की स्थापना हुई और इससे सामाजिक आत्मबल और आत्मविश्वास आया। इन संस्थाओं के नेता ईसाई मिशनरियों से टक्कर लेने लगे। धार्मिक जागृति के साथ राजनैतिक जागृति भी आई, स्वदेश प्रेम की भावना भी विकसित होने लगी और प्रबुद्ध वर्ग के, विज्ञान की ओर आकर्षित होने लगे।

इस वातावरण में उन्नीसवीं सदी के मध्यान्तर में स्वामी विवेकानंद के अतिरिक्त अनेक विभूतियों का भी आविर्भाव हुआ। कुछ नाम हैं - बाल गंगाधर तिलक (१८५६-१९२०), जगदीशचन्द्र बोस (१८५८-१९३७), रवीन्द्रनाथ ठाकुर (१८६१-१९४१), लाला लाजपत राय (१८६५-१९२८), गोपालकृष्ण गोखले (१८६६-१९१५), महात्मा गाँधी (१८६९-१९४८) एवं अरविन्द घोष (१८६९-१९५०)। जगदीश चन्द्र बोस पहले भारतीय थे जिन्हें वैज्ञानिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई। रवीन्द्रनाथ ठाकुर उत्कृष्ट कवि, साहित्यकार एवं दार्शनिक थे और वे भारत के प्रथम नोबल पुरस्कार विजेता था। तिलक, गोखले, गाँधी, लाजपतराय स्वतंत्रता संग्राम के सूत्रधार, अरविन्द घोष प्रारम्भ में एक क्रांतिकारी और बाद में एक दार्शनिक और संत के रूप में भारतीय क्षितिज पर उदित हुये।

गुरु से साक्षात्कार : नवम्बर १८८० में, जब वे १७ वर्ष के थे, नरेन को रामकृष्ण परमहंस (१८३६-१८८६) से मिलने का संयोग प्राप्त हुआ। उस समय रामकृष्ण बंगाल के सर्वमान्य संत के रूप में विख्यात थे और उनके अनुयायी सभी धर्मों और वर्गों से थे। प्रारम्भ में रामकृष्ण दक्षिणेश्वर के मंदिर में काली के पजारी थे, लेकिन वेदान्त के सम्पर्क में आकर वे क्रमशः सगुण-ईश्वर के उपासक बने और फिर एकेश्वरवाद की ओर उन्मुख हुए थे। वे बचपन से ही समाधिस्थ होकर अचेतन अवस्था में पहुँच जाते थे। जैसे-जैसे उनकी उम्र बढ़ती गई, उनकी समाधि-साधना उच्चतर समाधि की अवस्था में विकसित होती गई। समाधि की अवस्था में उन्होंने हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं के अतिरिक्त अन्य धर्मों के प्रतिष्ठापक, जैसे ईसा मसीह तथा हज़रत मुहम्मद की अनुभूति भी की। आज के भौतिकवादी युग में जहाँ सत्य का सम्बन्ध वैज्ञानिक प्रमाण से जुड़ा है, रामकृष्ण के व्यक्तित्व एवं उनके आध्यात्म को समझना कठिन है।

पहली भेंट के समय रामकृष्ण ने नरेन को एक गीत गाने का आदेश दिया। पहले साक्षात्कार में ही उन्होंने नरेन को देख कर कहा था - 'जब मैंने नरेन को देखा तब देखते ही पहचान लिया कि वह ऋषि का रूप है।....जिस दिन नरेन दुख और क्लेश के सम्पर्क में आयेगा, उस दिन उसके चरित्र का अभिमान एक अपार करुणा के भाव में बदल जायेगा। तब उसका प्रबल आत्मविश्वास दूसरी हारी हुई आत्माओं में विश्वास और आस्था जगाने का साधन बनेगा।'

गीत सुनने के बाद उन्होंने नरेन से आग्रह किया कि वे दक्षिणेश्वर के मंदिर में उनसे फिर मिलें। नरेन वहाँ मित्रों की टोली के साथ पहचे और रामकृष्ण के आदेश पर एक गीत गाकर सुनाया, जिसे सुन कर रामकृष्ण आत्मविभोर होकर रोने लगे और फिर नरेन का हाथ पकड़ कर कहने लगे, 'तुम कितने निर्दयी हो, तुमने इतनी प्रतीक्षा क्यों करवाई....प्रभु मैं तुम्हें पहचानता हूँ, तुम्हीं पुराणों के ऋषि नर हो, नारायण के अवतार।'

नरेन यह सुन कर स्तम्भित रह गये और रामकृष्ण को एक पागल समझ कर उनसे दूर रहने लगे, परन्तु रामकृष्ण के आग्रह करने पर फिर उनसे मिलने आने लगे। इन भेटों में नरेन उनसे तर्क करते और रामकृष्ण उनका समाधान। कई बार उनके प्रश्नों से तथा तीव्र आलोचना से रामकृष्ण मर्माहत हो जाते - एक बार नरेन ने उनसे पूछा, 'आप कैसे जानते हैं कि आपकी सारी उपलब्धियाँ केवल मरीचिका नहीं हैं, एक रोगी मस्तिष्क की उपज।' 'आकर्षण-विकर्षण' की यह प्रक्रिया कई साल तक चलती रही और नरेन १७ साल से २० साल की उम्र तक परस्पर विरोधी विचार-धाराओं के अनवरत तूफ़ानी संघर्ष में उद्विग्न होते रहे। नरेन ने स्वयं लिखा है, 'यौवन से ही रोज़ रात को सोते ही दो स्वप्न मेरे सामने रूप लेकर खड़े हो जाते - एक में मैं अपने को पृथ्वी के प्रभुओं में देखता - धन, मान सत्ता और कीर्ति से सम्पन्न, और मुझे यह लगता कि यह सब प्राप्त करने की क्षमता मुझमें है; दूसरे क्षण मैं देखता कि मैंने सभी भौतिक सम्पदा का त्याग कर दिया है और प्राचीन ऋषियों की भाँति भिक्षा-वृत्ति से जीवन-यापन कर रहा हूँ।'

इसी दौरान, सन १८८४ में नरेन के पिता का हृदयगति रुक जाने से अचानक स्वर्गवास हो गया। पिता दानी स्वाभाव के तथा अमितव्ययी थे जिससे परिवार की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई थी - उन पर बहुत लोगों का कर्ज़ था। नरेन भाई-बहनों में सबसे बड़े थे अतः माँ के अलावा चार भाई बहनों के पोषण का भार उनके ऊपर आ पड़ा।

नरेन स्वाभिमानी तथा उद्धत स्वाभाव के थे, उनका पालन-पोषण राजकुमारों की तरह हुआ था। अब वह विवश थे, उनको नौकरी की तलाश करनी पड़ी। नंगे पैर, भूखे, एक दफ़्तर से दूसरे दफ़्तर में चक्कर लगाते, सब जगह से निराशा ही मिलती। उन्होंने लिखा है, 'जो व्यक्ति कुछ दिन पहले मेरी सहायता करने में गर्व अनुभव करते, अब सहायता सम्पन्न होते हुए भी मुझे देख के मुँह फेर लेते थे।' ऐसी परिस्थिति म उनका ईश्वर से विश्वास उठने लगा था।

एक शाम की बात है, नरेन भूखे-प्यासे, ज्वर से पीड़ित, नौकरी की तलाश में भटक रहे थे, बेहोश हो कर भूमि पर गिर गये। सहसा उन्हें लगा कि 'आत्मा के सामने से पर्दा उठ रहा है और प्रकाश फूट रहा है, उनके सारे भ्रम दूर हो गये हैं। फिर उनका चित्त शांत हो गया और शरीर में स्फूर्ति लौट आई।'

दूसरे दिन उन्होंने निश्चय कर लिया कि अपने दादा की भाँति वह भी वैराग्य धारण करेंगे। संयोगवश उसी दिन उनकी रामकृष्ण से भेंट हुई। उन्होंने नरेन की मनोस्थिति को जान लिया कि अब नरेन उस मार्ग का अवलम्बन करने जा रहे हैं जिसके लिए उनका जन्म हुआ था।

रामकृष्ण का स्वास्थ्य उन दिनों बहुत गिरा हुआ था - वे गले के कैन्सर से पीड़ित थे। अनेक प्रकार के उपचार किये गये, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। दिसम्बर १८८५ में उन्हें काशीपुर के सुन्दर उद्यानों के बीच एक घर में लाया गया, जहाँ उनकी सेवा-शुश्रूषा के लिए नरन तथा उनके अन्य शिष्य तत्पर थे। एक दिन इसी उद्यान में नरेन संज्ञाहीन हो गए, उनका शरीर शव की भाँति हो गया और उनके साथी अत्यंत चिन्तित हो कर रामकृष्ण के पास गये। वे मुस्कराये, थोड़ो देर में नरेन समाधि से जागृत हुए, गुरु के पास आये और कहने लगे, 'गुरु जी मैं तो समाधि में परम आनंद से था - संसार को भूल गया था। मुझे उसी अवस्था में क्यों न रहने दिया?' गुरु ने फटकारा, 'लज्जा नहीं आती तुम्हें?....मैं तो समझता था कि तुम विशालतर जीवन के पात्र हो और तुम साधारण जन की भाँति समाधि में डूबे रहना चाहते हो।....तुम दुनिया में बड़े-बड़े काम करोगे, लोगों में आध्यात्मिक चेतना जगाओगे और दीन निर्धन का क्लेश हरोगे।....जब यह काम पूरा हो जाये तब समाधि का आनन्द लेना।'

गुरु के अंत समय तक नरेन उनके पास रहे। मृत्यु से तीन-चार दिन पहले उन्होंने नरेन को अपने पास बुलाया और कहा, 'आज मैंने तुम्हें अपना सब कुछ दे दिया है और अब मैं निरा कंगाल हूँ जिसका अपना कुछ नहीं है। इस शक्ति से तुम संसार का बहुत-सा हित कर सकोगे और उसको पूरा करके ही वापिस लौटोगे।'

रविवार १५ अगस्त सन १८८६ को गुरु ने पार्थिव शरीर त्याग दिया। अंतिम क्षणों तक वे नरेन को उपदेश देते रहे।

रामकृष्ण आश्रम की स्थापान एवं भारत दर्शन : गुरु के स्वर्गवास के समय नरेन केवल २३ वर्ष के थे, और शिष्यों में सबसे प्रतिभाशाली थे। उन्होंने गुरु का आदेश शिरोधार्य किया था और उसे क्रियान्वित करने के लिए तत्पर भी थे, लेकिन किसी के मस्तिष्क में क्रियान्वन की कोई ठोस योजना नहीं थी। सबसे पहले बड़ नगर में गंगा के किनारे एक जीर्ण मकान किराये पर लिया गया जो सबसे पहला रामकृष्ण मठ बना। १२ से अधिक शिष्यों ने २५ दिसम्बर १८८६ के दिन सांसारिक नाम त्याग कर आश्रमिक नाम ग्रहण किये - राखाल चन्द्र घोष 'योगानंद' और हरिनाथ चटर्जी 'तुरीयानंद' बने। नरेन के कई नाम थे, लेकिन अंत में वे विवेकानंद के नाम से विख्यात हुए; उन्हें मठ के संचालन का दायित्व सौंपा गया। इन सभी शिष्यों ने, जो नरेन की उम्र के तथा नरेन की भाँति सम्पन्न परिवारों से और सुशिक्षित थे, वेदान्त के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

नरेन के अधिकांश साथियों का ध्यान व्यक्तिगत आत्मसिद्धि पर केन्द्रित था, परन्तु नरेन ने 'उन्हें भगवत-भजन के आलस्य की अनुमति नहीं दी।' नरेन उन्हें 'मानवीय चिन्तन और दार्शनिक समस्याओं पर शास्त्रार्थ करने पर बाध्य करते। इस प्रकार एकान्तवास के इस काल को एक उच्चतर आध्यात्मिक विद्याध्ययन में परिणित कर दिया। 'कुछ साथी इस कठिन पद्धति का अनुसरण न कर सके

और आश्रम छोड़ कर अन्य स्थानों पर चले गये। नरेन आध्यात्मिक प्रचार के लिए कुछ दिनों के लिए बाहर जाते परन्तु कुछ समय बाद वापस लौट आते। उनमें आश्रम की व्यवस्था से मुक्ति पाने का विचार प्रबल होने लगा था और वे रामकृष्ण का संदेश दूर-दूर तक प्रचारित करने क लिए लालायित हो रहे थे। अतः वे मठ छोड़ कर एक अनाम परिव्राजक बने, दो साल तक उत्तर भारत में भ्रमण करने के बाद लौटे और फिर फरवरी १८९१ मे, आश्रम बंधुओं के आग्रह करने पर भी दिल्ली से अकेले ही पैदल चल दिए। इस बार राजपूताना, गुजरात, मलाबार होते हुए दक्षिण भारत के छोर कन्याकुमारी पहुँचे। नाव का किराया पास में न था, समुद्र में कूद पड़, जलडमरूमध्य तैर कर पार किया और लंका छू कर फिर वापस आ गए।

इन लम्बी यात्राओं में उन्होंने बहुत कुछ सीखा, और बहुत कुछ सिखाया। राजा महाराजाओं से लेकर अछूत भंगियों के परिवारों में ठहरे। जब कभी वह दीन, दुखी, असहाय तथा समाज से तिरस्कृत लोगों को देखते, उनकी करुणा उमड़ आती, आँखों में आँसू आ जाते। धनी लोगों से कहते, 'क्या आप लोगों में से एक भी ऐसा नहीं है जो पर-सेवा में अपना जीवन अर्पण कर सके?' मठाधीश और साधु-संतों से कहते, 'आत्मनिष्ठ धर्म एक बौद्धिक-विलास मात्र है। . . . .वेदान्त पाठ, चिन्तन-मनन फिर कर लेना, इस शरीर को सेवा में अर्पित कर लेना, इस शरीर को सेवा में समर्पित कर दो। . . . हम धर्मात्मा कहे जाने वाले सन्यासियों ने जनता के लिए क्या किया है?'

इस यात्रा में उन्होंने प्राचीन भारत की उस संस्कृति की झलक देखी - जिसके देवी-देवता भग्नावशिष्ट रूप में सारे संसार में बिखरे पड़ थे। देखा कि समाज परस्पर-विरोधी समुदायों में विभक्त था - एक ओर रुढ़िवादी एवं पुराणपंथी जो धर्म के नाम पर सड़ी-गली कुप्रथाओं के भी हामी थे, दूसरी ओर देखे वे व्यक्ति जो अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर, पाश्चात्य वैभव से चमत्कृत, ईसाई मिशनरियों के विषाक्त प्रचार के शिकार - जिनमें वैदिक धर्म एवं सनातन धर्म की मूर्ति-पूजा के प्रति अविश्वास और तिरस्कार का भाव जागृत हो रहा था। उन्होंने 'अविश्वासी आत्माओं को ईश्वर में आस्था, अमूर्त में आरक्त बौद्धिकों को देव-मूर्तियों का आदर करना सिखाया, युवकों को वेद, पुराण आदि प्राचीन गौरव-ग्रंथों का और इससे भी अधिक आज के समाज का अध्ययन करना सिखाया और सभी को सिखाया सम्पूर्ण श्रद्धा से भारत-माता के लिए आत्मोत्सर्ग का आनन्द।'

इस यात्रा में कुछ स्थान और घटनाएँ विशेष रूप से स्मरणीय हैं। १८९२ के शीत काल में उन्होंने खंस्वा (मध्यप्रदेश) में सुना कि अगले वर्ष अमेरिका के शिकागो नगर में एक सर्व-धर्म सम्मेलन होने जा रहा है। सुन कर सम्मेलन में जाने की इच्छा हुई। कन्याकुमारी से लंका तक समुद्र में तैरते समय एक बार फिर अपना जीवन दीन-दुखियों की सेवा में समर्पित करने का संकल्प किया और जब पांडिचेरी होते हुए मद्रास गये तब अमेरिका जाने के निश्चय को सार्वजनिक रूप से व्यक्त किया। 'समय आ गया है। ऋषियों का धर्म आज नई तेजस्विता ग्रहण करेगा। उसे अपने गहवर से बाहर आना ही होगा। . . . .मैं समस्त भारत की प्रदक्षिणा कर चुका हूँ. . . .मेरे बंधु, अपनी आँखों से जन-समुदाय की भयंकर दरिद्रता और पीड़ा देखने की वेदना मैंने अनुभव की है, ...उसका काठिन्य दूर करने का यत्न किये बिना उनको धर्म-शिक्षा देना व्यर्थ है, भारत के दरिद्र-जनों की मुक्ति का साधन जुटाने मैं अब अमरीका जा रहा हूँ।'

जयपुर के पास खेतड़ी के महाराज ने, जिनसे उनकी मित्रता सन १८९१ में हुई थी, उनके टिकट तथा अन्य व्यय की व्यवस्था की और लाल रेशमी अंगरखे और गेरुई रंग की पगड़ी भेंट की। नरेन ने पुनः विवेकानंद नाम धारण किया। तत्पश्चात वह विश्व में इसी नाम से विख्यात हुए।

विवेकानंद जी की मान्यता

घिरे रहेंगे जब तलक अज्ञानता के अँधेरों से
जलते रहेंगे जब तलक पेट की आग में भूख से
उन सहस्त्रों-लाखों के प्रति मानूँगा मैं गद्दार उन्हें
पहुँच कर जिन्होंने शिक्षा की बुलन्दियों पे
फेर ली हैं नज़रें उन्हीं से जिनके बूते पे
पहुँचे हैं इस मुक़ाम पे आज ये।

स्नेह ठाकुर

जाओगे कहाँ तुम भगवान को ढूँढने?
क्या सब दीन-दुखियारे भगवान नहीं?
करो पूजा उनकी सबसे पहले,
क्यों खोदते हो कुआँ गंगा-किनारे !
देखता है भगवान जो शक्तिहीन गरीबों में
करता है वास्तव में ईश्वर-दर्शन वही।

अपूर्णा

अलका सिन्हा

"बोलो बिट्टू, तोमार नाम की? बोलो।" दादी ने पूछा तो बिट्टू ने अपनी बड़ी-बड़ी भोली आँखें दादी के पोपले चेहरे पर टिका दीं। दादी ने उसे पुचकारा, "बिट्टू बोलो, आमार नाम हिम।" पर हिम नहीं बोला। दादी के गले में बाँहें डाल हँसता रहा, जैसे अपना नाम बोलने में कोई गुदगुदी होती हो। दादी ने फिर समझाना चाहा, पर हिम वैसे ही नटखट-सा मुस्कराता रहा। फिर एकाएक आँखों को गोलमटोल करता हुआ तुतला उठा, "तोमार नाम की?" दादी ने जैसे सोचा ही न हो, वह कुछ सकपका गई। नाम याद करते हुए सचमुच एक गुदगुदी-सी हो गई पूरे शरीर में। दादी को यों निरुत्तर देख हिम ने समझाते हुए कहा, "बोलो, आमार नाम दा-दी।"

हिम दादी की गोद में ही सो गया था। दादी यों ही अंदाज़ा लगाने लगी, वह करीब सत्तर पार कर चुकी थी। माना कि उम्र कुछ ज़्यादा ही हो चली है और वह अब छोटी-छोटी बातें भी भूल जाया करती है पर ऐसा भी क्या भुलक्कड़पन कि अपना नाम भी याद न आए। बहुत कोशिश की पर कोई फ़ायदा नहीं। कुछ बेचैनी-सी होने लगी, बेचैनी से भी अधिक हैरानी। पर वह भी क्या करे, बेटा माँ पुकारता है, बहू तो संबोधन भी कम ही देती है और हिम तो जैसे एक ही शब्द कहना जानता है, जब देखो दादी। माँ-बाबा नहीं कहता, बस एक रट दादी। फिर ध्यान आया, इन्होंने भी कभी नाम नहीं लिया। जब ज़रूरत पड़ी सुनो जी, और बात शुरू। वह सोचने लगी, जब उसने बहस की थी, "नाम क्यों नहीं लेते मेरा?" तब ये हाथ मटकाते कहने लगे थे, "सुनो जी एक ही तो गुण आया है मुझमें पत्नीव्रती पति का उसे तो न छीनो।" वे हँसने लगे थे।

दादी गहरे ख़्वाब में डूबती जा रही थी। क्या नाम था उसका? कुछ था तो, अच्छा-सा...। हिम उसके पोते का बेटा... यानी चौथी पीढ़ी। वह बेटी से पत्नी, फिर माँ, फिर दादी अब परदादी बनी। वह झुल-झुल बुढ़िया अपने हाथों-पैरों को देखती है तो लगता है कि ये सूखी लकड़ियाँ अब होम हो जानी चाहिए। पर अपने हाथ में क्या है? आँखों की बरौनियाँ तक पककर सफ़ेद हो चुकी है। यह लंबा सफ़र उसे ताउम्र भटकाता रहा....छलता रहा। वह आँखें मूँदकर फिर खोलती है, कुछ खोजने की कोशिश में - अपना नाम.... अपना परिचय....क्या था भी कभी?

इसी दशहरा की तो बात है, उसका बड़ा पोता कनाडा से आया हुआ था। घर में बड़ी पूजा थी, खाते-पीते अच्छी दोपहर हो गई थी। पोते की बहू उसे खिला-पिलाकर पैर दबाने लगी तो उसके रोम-रोम ने आशीर्वाद दिया। इतने में छोटा पोता हँसकर पूछने लगा, "चीन्हती भी है दादी, कौन पैर दबाती है?"

"अरे हाँ रे, तेरी दुलहिनिया है।"

"ना दादी, ये तो भाभी है।"

उसने झट आँखें तरेरकर खंडन किया। "विदेसी बहू को कहाँ फुरसत है मेरी सेवा की," इस पर सुराज ने समझाया था, "हाँ माँ, ये बड़के की दुलहिन है।"

सच है उम्र का एक लंबा दौर उसने काट दिया है। पीछे पलटकर देखती है तो बचपन को सीधे-सीधे नहीं पकड़ पाती। लंबी सुरंग-सी ज़िंदगी....हाँ, उलटे-उलटे पैर लौटे तो कुछ-कुछ ध्यान आता है। हिम-सुराज के छोटे बेटे का बेटा है जिसका कोई तीन-चार साल पहले ही ब्याह हुआ था। सुराज का बड़ा बेटा कनाडा में नौकरी करता है। उसके एक बेटा और एक बेटी है जो अकसर दुर्गापूजा में घर आते हैं। इस बार

भी आया था तो उसके लिए बड़ी सुंदर चिकनी-सी साड़ी लाया था, पर वह उसे बहुत नहीं पहन पाती है, माथे से सरका जाती है साड़ी। अब तो बाल भी गिनती के रह गए हैं सिर पर। उसने सिर पर हाथ फेरा... सन-से सफ़ेद-भुट्टे जैसे बाल....। बचपन में भुट्टे के बाल इकट्ठे किया करते थे हम....वह सोचने लगी। और सोचते हुए अपने बाबा के मकान के पिछवाड़े जा पहुँची....बरसों पीछे मिट्टी का घर, ऊपर खपरैल का छत... पिछवाड़े में खड़ा नीम गाछ। वह संभ्रांत बंगाली परिवार की लड़की थी, उस ज़माने में भी काफ़ी आधुनिक सोच वाले थे उसके माता-पिता। मास्टर जी घर पर आते थे पढ़ाने के लिए, तब वह इसी पिछवाड़े छिप जाया करती। कभी भुट्टे के बाल अपने बालों पर ढक देती और बुढ़िया बनकर हैरानी से सोचती- क्या कभी सचमुच ऐसी ही बूढ़ी हो जाएगी वह भी? वक्त आज उसे अजीब से मोड़ पर ले आया था। आज वह बूढ़ी जर्जर अपने बचपन को टटोल रही थी।

"गुड्डी....गुड्डी.... " माँ पुकार रही थी, "खित्तदा आए हैं कहाँ छिपी बैठी है?" पहले भी दो रोज़ लौट गए थे खित्तदा। माँ झल्ला रही थी जब नहीं पढ़ना चाहती तो ज़रूर है पढ़ाना....छोड़ो भी, लड़की है, कोई लड़का तो है नहीं कि कमाकर खिलाए। माँ बड़बड़ाती हुई बाबा पर गुस्साने लगी, "अरे लड़की को सिलाई-बिनाई सिखाना चाहिए, खूब पढ़-लिखकर क्या करेगी, अपना नाम लिख लेती है, बस हो गया।" "अपना नाम.... "हाँ, यही तो टूटा तार था उसका। उसने लिखा है अपना नाम, इन्हीं उँगलियों से....पर आज याद नहीं आ रहा। नाम....जिसे दुनिया में उजागर करने की प्रेरणा देते थे खित्तदा....हाँ, खित्तदा, नाम तो था क्षितिज, पर खित्तदा ही पुकारते थे सब उन्हें। कैसी जोश भरी बातें करते थे खित्तदा, "जननी जन्मभूमि स्वर्ग से महान है। जानती हो, हमारा देश अभी आज़ाद नहीं है, अंग्रेजों के शिकंजे में जकड़ा है और पराधीन जीवन व्यर्थ है, एकदम व्यर्थ....। हमें कुछ करना चाहिए, इस देश का क़र्ज़ा है हम पर, हमें उसे खून देकर भी चुकाना होगा। ये जो तुम भागती हो पढ़ने से क्या सोचती हो, तुम लड़की हो तो फ़ारिग हो गई इस ज़िम्मेवारी से?"

वह हैरान देखती, "आमी की, कैनो...मैं क्या, कैसे कर सकती हूँ खित्तदा?" "तुम क्या नहीं कर सकती? देखो तुम लड़की हो, तुम्हें देखकर कोई शक भी नहीं करेगा....हमारी कितनी चिट्ठी-पतरी पहुँचा सकती हो....पर नहीं, तुम्हारे बस का नहीं। तुम तो एक डरपोक लड़की हो और पढ़ाई-लिखाई से भी तुम्हारा दूर-दूर तक वास्ता नहीं....ना-ना तुम से न होगा।"

वह आज भी विह्वल हो गई है। खित्तदा ने उसकी ज़िंदगी को नया अर्थ दिया था, उद्देश्य दिया था। कितनी ही बार उसने उनके ज़रूरी काग़ज़ इधर-उधर पहुँचाए थे, किसी को कानोंकान ख़बर न हुई थी। एक बार कालीबाड़ी के पीछे से निकलते हुए गीली मिट्टी पर पैर फिसल गया और उसकी चीख निकल आई। गोरे सिपाही दौड़कर आए थे, घेर लिया उसे।

"किधर जाता? नाम केया तुम्हारा?" एक पल को घिग्घी बँध गई उसकी, पर फिर अगले ही पल वह और गँवारों-सी मुँह फाड़कर रोने लगी, "आमार नाम केया।"

"केया....? वाट....? नाम बताओ....जल्दी, नहीं तो अरेस्ट कर ले जाएँगे।"

"ओई तो....आमार नाम केया, केया तुमी जानो ना? एकटा फूल होए।" और ऊपर डाल पर लगे फूल की ओर इशारा किया था उसने।

"तुम को फूल माँगता?" गोरा हँसने लगा और डाल हिलाकर ढेरों फूल गिरा दिए उसने....नीचे हरसिंगार के सफ़ेद-सिंदूरी फूल-ही-फूल बिछ गए थे।

वह हँस पडी....केया, नहीं यह तो यों ही, अंग्रेज़ों के वाट-वाट, केया-केया सुनकर रख लिया था उसने और यही नाम काम कर गया था। बहरहाल, केया नाम भी बुरा नहीं था। खित्तदा हौले-से हँसे थे उसकी चातुरी पर।

"देखो केया, ज़ोखिम भरा काम है यह, जान भी जा सकती है इसमें।"

"जानती हूँ खित्तदा, जग्ग(यज्ञ) में आहुति तो देना ही पड़ता है। मैं तैयार हूँ... आप आगे का काम बताएँ," उसने कमर कस ली थी। ऐसे कितने ही अवसर आए थे। वह घर से निकलती तो एक बार भर आँख देखती थी अपना घर और पिछवाड़े का नीम गाछ।

"काम होने पर मिलूँगी खित्तदा," कहकर एक आशा बाँधे सख़्त बनकर निकल पड़ती थी। समय जैसे पींग बढ़ा रहा था, अब वह भी खित्तदा के दल और अभियान का एक ज़रूरी हिस्सा थी। ऐसा सिर्फ़ एकबार ही हुआ था कि कोई काम उसे सौंपने से मना कर दिया था खित्तदा ने।

"केनो, केनो," पूछ-पूछकर जी हलकान कर बैठी थी वह।

"नहीं, बहुत जोखिम भरा काम है यह, और फिर ससुरारियों को किंचित शंका भी हो गई है तुम पर....।" खित्तदा अँग्रेज़ों को गुस्से में ससुरारी कहकर गलियाते थे।

"शक ससुरारी को नहीं, तुम्हें है खित्तदा, मेरी क़ाबिलीयत पर, जाने दो मुझे, विश्वास करो, काम पूरा किए बिना मरूँगी नहीं मैं।"

अगले रोज़ सुबह-सुबह एक पंजाबिन खित्तदा के दरवाज़े खड़ी थी।

"किसी चाहिए? हमने पहचाना नहीं आपको?" खित्तदा ने विस्मय से पूछा तो वह झक्क से हँस दी, "तुस्सी मैन्नू पहिचान सकदे ने? नई ना... तो ससुरारी मैन्नू किस तरा पहिचान सकदे हाँ? खित्तदा, तुस्सी शुबा ना करो, मैन्नू कम्म सौंपो...।"

"ओरी बाबा....तुमी अपूर्णा....," कहते हुए खित्तदा ने खुशी से तीन बार ताली बजाई, "खूब भालो, खूब भालो अपूर्णा।"

हाँ, अपूर्णा! यही तो नाम था उसका, नहीं अपूर्णा....कलकत्ता से अपूर्णा बन गया था। पर यही सही-सगा नाम था उसका, उसकी परिणति को दर्शाता। खित्तदा ने सबसे भारी काम सौंप दिया था उसे। वह निकल पड़ी थी उसे अंजाम देने। पर उधर किसी ने मुखबिरी की और उधर गोरों ने घेर लिया खित्तदा को। खित्तदा पुलिस मुठभेड़ में मारे गए। काम पूरा कर लौटी तो पता चला। लगा जैसे अपूर्णा ही रह गई वह....। कितनी लंबी बरसात रही....अपूर्णा छिप-छिपकर रोती रही।

वक्त बीतता चला गया। खित्तदा की जगह कोई न ले सका। दल के सभी साथी बिखर गए। कुछ एक तो अलग दलों में जा मिले और प्रफुल्लो दा ने नीरा दी से ब्याह कर गृहस्थी बसा ली। बाबा ने सुयोग्य वर देखकर उसे भी ब्याह दिया। वह मन में एक टीस दबाए नियति के आगे नतमस्तक हो गई। ब्याह का विरोध कर पाने का संस्कार नहीं था उसके पास। एक हूक ही रह गई कि वह भी देश के काम आती।

दीपेन रोज़ सुबह-सबेरे घर से निकलते और देर रात लौटते।

"सुनोजी मैं बिज़सेस काज से दिल्ली जा रहा हूँ, सप्ताह भर में लौटूँगा, तुम्हें भय तो नहीं लगेगा?"

"मैं किसी से नहीं डरती।" एकदम सधी आवाज़ में अपूर्णा बोली थी। दीपेन अकसर काम से दिल्ली-कलकत्ता करते रहते। एक दिन कुछ ज़्यादा ही विचलित दिखाई पड़ रहे थे।

"सुबह से देख रही हूँ, बरामदे में चहलक़दमी कर रहे हैं, कोई परेशानी है तो बताइए।"

और दीपेन ने पहली बार नज़र भर कर देखा था अठारह बरस की उस दिलेर लड़की को। "जानती हो, मेरे जीवन का एक मिशन है, एक ध्येय - आज़ादी....सुराज....अपना देश....अपना राज...किसी की गुलामी नहीं....सुराज....सुराज।"

अपूर्णा को लगा जैसे उसका जन्म फिर अर्थ खोजने लगा। वह अपना टूटा तार फिर से जोड़ने लगी और बुलंद इरादों से खड़ी हो गई दीपेन के साथ। कदम-कदम पर ख़तरों से खेलना उसकी और दीपेन की दिनचर्या बन गई थी। दीपेन गर्म दल के सक्रिय कार्यकर्ता थे, स्वतंत्रता की ललक सर चढ़कर बोल रही थी। एक दिन उन्होंने अँग्रेज़ कलेक्टर पर बम फेंका, उन पर मुक़दमा चला और वंदेमातरम का नारा लगाते वे फाँसी के फंदे पर झूल गए। अपूर्णा ने वैधव्य का सिंगार ओढ़ लिया। सूना माथा, सूने हाथ....शाखा-पोला, सब धरा का धरा रह गया। फिर पंद्रह अगस्त आया....स्वतंत्रता मिली....मिशन पूरा हुआ....खित्तदा का मिशन....दीपेन का मिशन। अपूर्णा का मिशन भी ठीक उसी रोज़ पूरा हुआ।

"मुबारक हो दीदी, बेटा हुआ है....नाम सोचा है कुछ?"

"सुराज।" अपूर्णा की मुँदी आँखों से जलधार बह निकली।

आज भी नयन कोर गीले हो गए बूढ़ी अपूर्णा के। किंतु नहीं....वह अपूर्णा थी ही कब....वक्त के हाथों नाचती कठपुतली थी वह। उसे गाना अच्छा लगता था, पर बाबा की इच्छा थी वह पढ़े, उसने पढ़ा-बंगला, हिंदी और थोड़ी अंग्रेज़ी भी। खित्तदा ने सिखाया देश पर उत्सर्ग होना....खुद उत्सर्ग हो गए। दीपेन की संगिनी बनी....दीपेन ने साथ छोड़ दिया। नीरा दी उसे कितना भाती थी। भर हाथ लाल-लाल चूड़ियाँ, ताँत की लाल पाड़ की साड़ी, माथे पर बड़ी-सी टिकुली और माँग में टिहु-टिहु लाल सिंदूर। वह देखती थी ख़ुद को....ऐसे ही चूड़ियाँ छनकाते....सुराज के पीछे भागते....वह चाहती थी कि सुराज उसे दौड़ा-दौड़ाकर थका दे....पूछ-पूछकर, बोल-बोलकर माथा झुका दे। पर सुराज बिलकुल उलट था। शुरू से ही धीर-गंभीर, समझदार। वह बहुत भाँपकर चलता था कि कभी उसके किए से माँ को कोई तकलीफ़ न पहुँचे, बहू भी खूब ध्यान रखती थी अपूर्णा का।

लेकिन फिर भी, ज़िंदगी शायद नाम ही समझौतों का है। जब सुराज के बड़े बेटे को कनाडा जाना था नौकरी करने, तब वह कितना आहत हुई थी। पढ़ाई-लिखाई की यहाँ, लायक बनाया इस देश ने और सेवा करने चल दिया दूसरे देश? सुराज ने समझा-बहला दिया उसे। फिर उस रोज़ जब पासपोर्टवाला बाबू छानबीन करने आया था घर, और पोते ने धर दिया था उसकी हथेली पर सौ का एक नोट, तब सुराज ने तो अनदेखा कर दिया पर वह न कर सकी....बिलकुल ही टूट गई वह। क्या इसी दिन के लिए जान हथेली पर लिए फिरते थे हम सब....क्या इसी दिन के लिए खित्तदा ने, दीपेन ने अपनी जान उत्सर्ग की? उसकी ज़िंदगी का आधे से अधिक हिस्सा, सुराजेर माँ के नाम से जाना जाता रहा....क्या यही था सुराज?

हिम जाग गया था और दा-दी पुकारकर उससे लिपट गया। कितनी मिठास थी इस एक संबोधन में - जैसे उसके मन का सारा अवसाद ब्लॉटिंग पेपर की तरह ज़ज़्ब कर लिया हो हिम ने। वह झूल गया था दादी की टहनी-सी बाँह पर और लगा जैसे उसने हिला दी हो डाली फूलों की - "तुम को फूला माँगता?" ....और हर ओर जैसे हरसिंगार के सफ़ेद-सिंदूरी फूल-ही-फूल बिखर गए हों। ज़िंदगी आँख मिचौली खेलती उसी से पूछ रही थी। कौन हो तुम - पूर्णा... या अपूर्णा...

"जीवन निरन्तर संघर्ष का ही दूसरा नाम है, धैर्य इसकी साधना का प्रधान अंग है, सहिष्णुता इसकी नाड़ी है, प्रयत्न इसका हृदय और प्रसन्नता इसकी देन है. चपेट खा जाने पर भी जो मन और प्रयत्न को छीजने न दे, वही आगे चलेगा, वही आगे बढ़ेगा." डॉ. वृंदावन लाल वर्मा

मानस - एक पूर्व-नियोजित संसार

डॉ. शंभु नाथ

तुलसीदास ने मानस में जहाँ हरि तथा हरिकथा की अनंतता[1] का उल्लेख किया है, वहीं उन्होंने इसके प्रस्तुतिकरण के वैविध्य को भी संकेतित किया है. शिव ने मानस की संरचना करके इसे सुरक्षित रख छोड़ा था[2] तथा उमा की पात्रता को परखते हुए उन्होंने पूरी कथा विस्तारपूर्वक सुना दी. कथा क्रम में उनकी यह उक्ति ध्यातव्य है :

'उमा दारु जोसित की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाईं।।'

'राम गोसाईं' ने सब कुछ पूर्व-निर्धारित तथा पूर्व-नियोजित रख छोड़ा है तथा उनके संकेतों पर सभी अजाने, बेसुध होकर नाच रहे हैं. पूर्वायोजन के दर्शन (Philosophy of Determinism) के सबल समर्थक जोनाथन एडवार्डस् भी इसी मत के थे कि मानव चाहे यह समझे कि वह अपने कृत्यों का कर्ता है, किन्तु वस्तुत: कर्ता तो स्वयं ईश्वर है, जिनके द्वारा सृष्टि में सब कुछ पूर्व-नियोजित एवं निर्धारित है.[3]

मानसकार ने जिस रूप में कथा-क्रम का आयोजन किया है, उससे यह सुप्रमाणित हो जाता है कि तुलसीदास के रचना-संसार में भी सब कुछ पूर्व-नियोजित (Determined) है. बालकाण्ड में मनु-शत्रुपा के प्रसंग को समायोजित करने में मानसकार का मन्तव्य स्पष्ट हो जाता है. तपी युग्म के द्वादशाक्षर मंत्र से जब स्वयं परम ब्रह्म परमेश्वर प्रकट होते हैं, जिनके अंश से अनेकों ब्रह्मा, विष्णु, महेश उपजा करते हैं[4], तब मनु अपने मन की बात प्रकाशित करते हैं :

'दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहऊँ सति भाउ।
चहऊँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराव।।'

परमेश्वर के समक्ष उलझन उठ खड़ी होती है कि वे अपने समान दूसरा कहाँ से लायें और इसके समाधान में वे स्वयं ही अवतरित होने का निश्चय करते हैं :

'होईहहुँ अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत।'

इसी प्रकार भानुप्रताप के प्रसंग से रामकथा में रावण की भूमिका का पूर्व निर्धारण हो जाता है. कपटी मुनि के जाल में फँसकर भानुप्रताप जैसा सुविख्यात प्रजापालक तथा धर्मावलम्बी[5] राजा को यह श्राप मिल जाता है कि :

'जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार।'

यद्यपि उसी समय यह आकाशवाणी भी हुई कि ब्राह्मणों ने निरपराध राजा को बिना बिचारे श्राप दे दिया है[6], किन्तु रामकथा के पूर्व-नियोजित संसार में इससे सीधे कोई त्राण मिलने को नहीं. रावण को अपनी सुनिश्चित् भूमिका निभानी ही है, तभी उसे छुटकारा मिल सकता है. इसलिए एक अर्थ में रावण की

---

१. हरि अनंत हरिकथा अनन्ता.....बालकाण्ड - रामचरितमानस

२. रचि महेश निज मानस राखा. बालकाण्ड - रामचरितमानस

३. 'We may think we are choosing freely, but our choices in fact have been determined in advance, so that we can not actually make an original decision. Even though we may engage in elaborate deliberations about what choice to make, the ultimate decision is fixed, since God already knows it. Though we willingly make the choice that God expects, our willingness is merely another item that God controls, has foreseen and fore ordained.'

४. संभु विरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंश तें नाना।। बालकाण्ड - रामचरितमानस

५. प्रजापाल अति वेदविध कतहुँ नहिं अघ लेस। बालकाण्ड - रामचरितमानस

६. विप्रहु श्राप विचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा।। बालकाण्ड - रामचरितमानस

दशा तापस-तिय अहल्या जैसी है, क्योंकि मानस के रचना-संसार में वह भी एक अभिशप्त जीवन जीता हुआ मुक्ति का मूक आकांक्षी है. खर, दूषण के वध से ही वह ताड़ जाता है कि इन्हें मारने वाले स्वयं परमेश्वर हैं जिनका अवतरण 'सुररंजन भंजन महि भारा' के निमित्त हो चुका है, अत: तत्काल ही वह तय कर लेता है कि :

'तौ मैं जाई बैरु हठ करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ।।'

पूर्व नियोजित् व्यवस्था पर आधारित रामकथा में श्रापग्रस्त गौतम नारी की अवतारणा तथा उसकी सुदीर्घ, शिलित प्रतीक्षा इसके संकेतक हैं कि भगवान् श्रीराम के चरण द्वारा एक दिन उसके उद्धार का आयोजन सुनिश्चित् है :

'गौतम नारि श्रापवस उपल देह धरि धीर।

चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर।।'

पुष्प वाटिका प्रसंग में जब एक सखी जनक-तनया को यह सूचित करती है कि जिनकी छवि की सर्वत्र चर्चा है वे कुँअर दर्शनीय हैं. जानकी को उसकी बातें बड़ी प्रीतिकर प्रतीत होती हैं और उनके नेत्र दर्शन को अकुला उठते हैं. किन्तु सीता के लिए राम का यह दर्शन 'प्रथम दर्शन' नहीं, क्योंकि उनका मिलन तो सनातन एवं कालातीत है जिसे समय की परिधियाँ बाँध नहीं सकतीं और यह 'पुरातन प्रीति' सामान्य जन के लिए अलख है.[7]

पूर्वायोजन की पुष्टि सम्पाती-प्रसंग से भी होती है. सीता का पता करते जब वानरों का दल उस पर्वत के पास पहुँचता है जहाँ सम्पाती की कंदरा है, तब वह विशालकाय गृद्ध विशेष हर्षित होता है क्योंकि आज अनायास ही विधाता ने उसके लिए भरपूर भोजन भेज दिया है किन्तु दूसरे ही क्षण अंगद से यह सुनकर कि उसका भाई जटायु श्रीराम के कार्य को करते हुए परम-धाम को प्राप्त हो गया है, वह शोकाकुल हो उठा. सागर के तीर पर अपने अनुज का विधिवत् श्राद्ध करके सम्पाती ने वानरों को बताया कि एक बार वह जटायु के साथ यौवनावेग में सूर्य को स्पर्श करने को उड़ा था. सूर्य के आतप को न सह सकने के कारण जटायु तो लौट आया किन्तु वह अभिमानवश सूर्य के पास चला गया, जहाँ उसके सारे पंख झुलस गये और वह चीत्कार करता हुआ ज़मीन पर गिर पड़ा. फिर उसकी भेंट चन्द्रमा नामक मुनि से होती है जिन्होंने बताया कि त्रेता युग में साक्षात् परम ब्रह्म मानव शरीर धारण करेंगे तथा उनकी पत्नी को राक्षसराज हर ले जायेगा. मुनि ने यह भी बताया कि प्रभु के दूत सीताजी को ढूँढने आयेंगे और उन्हें जब सम्पाती जानकी का पता देगा तो उसके पंख फिर से उग आयेंगे.[8] इस वृत्तांत से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि रामकथा का सम्पूर्ण घटना-क्रम पूर्व-नियंत्रित एवं सुनियोजित है तथा जो कुछ घटित हो रहा है वह पूर्वायोजन के क्रम में पश्चातवर्ती घटना-मात्र ही है.

इसी प्रकार रामचरित का पता लंकिनी को भी है जो हनूमान् के प्रहार से व्याकुल होते ही समझ जाती है कि अब राक्षसों का संहार सुनिश्चित् है. वह हनूमान् की स्तुति करते हुए कहती है :

जब रावनहि ब्रह्म वर दीन्हा। चलत विरंचि कहा मोहि चीन्हा।।

विकल होसि तैं कपि कें मारे। तब जानेसु निसिचर संहारे।।

---

7. तासु बचन अति सियहिं सोहाने। दरस लागि लोचन ललचाने।।
   चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई।। बालकाण्ड - रामचरितमानस
8. त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिही। तासु नारि निसिचर पति हरिही।
   तासु खोज पठई प्रभु दूता। तिन्हहिं मिले तैं होब पुनीता।।
   जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। तिन्हहिं देखाई देहेसु तैं सीता।।
   मुनि कै गिरा सत्य भइ आजु। सुनि मम वचन करहु प्रभु काजू। किष्किन्धाकाण्ड - रामचरितमानस

तात मोर अति पुन्य बहूता। देखऊँ नयन राम करि दूता।।

रामकथा में आगामी घटना-क्रम के पूर्व संकेत सपने के माध्यम से भी प्राप्त होते हैं. लंका दहन, रावण वध, सीता उद्धार, विभीषण का लंकापति होना आदि सारी घटनाओं का उल्लेख[9] त्रिजटा करती है, जिसे आने वाले कल की बातों का ज्ञान सपने में ही हो जाता है.

वस्तुत: पूर्वायोजन का विधान ईश्वर की सर्वोच्च सत्ता का सूचक है. यह कोरी भाग्यवादिता नहीं जो कि मानवोचित कर्मों को निरुत्साहित करे क्योंकि राम-कथा एक कर्म-प्रधान कथा है. सीताहरण से साधनहीन, वनवासी राम विचलित नहीं होते, बल्कि अपने बूते पर सुसंगठित होकर संघर्ष करते हैं. कर्म करना व्यक्ति के लिए अपेक्षित है, किन्तु फल की चिंता उसे नहीं करनी है, क्योंकि यह तो अदृश्य नियति पर आधारित है. तुलसीदास ने भी इसे स्पष्ट किया है कि ईश्वर की इच्छा बलवती होती है, वे जैसा चाहते हैं, वही होता है.[10] संक्षेप में पूर्वायोजन का भी दर्शन यही है, जिसे विल ड्यूराँ (Will Durant) ने निम्नवत् शब्दबद्ध किया है :

Above all, determinism fortifies us to expect and to bear both faces of fortune with an equal mind. We remember that all things follow by the eternal decrees of God.[11]

[9] सपने वानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी।।
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।।
एहि विधि वह दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ विभीषन पाई।।
नगर फिरी रघुबीर दुहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई।। सुन्दरकाण्ड - रामचरितमानस

[10] संभु दीन्ह उपदेस हित नहि नारदहि सोहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान।।
राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई।। बालकाण्ड - रामचरितमानस

[11] The Story of Philosophy

क्यों तू दु:ख से वृथा डरे!

गुलाब खंडेलवाल

क्यों तू दु:ख से वृथा डरे!
बन कोल्हू का बैल निरन्तर क्षण-सुख हेतु मरे!

मणि-माणिक तो कंकड़-पत्थर
मान - प्रशंसा शब्दाडंबर
अर्थ-काम-सुख जो मृगजल भर
कैसे तृषा हरे!

यदि अन्तर चैतन्य-धाम हो
तू अकाम भी पूर्ण काम हो
क्या फिर जग दक्षिण कि वाम हो
तुझे न स्पर्श करे

जो भी चले सत्य के पथ पर
लुभा न सका उन्हें सुख पल भर
दु:ख की ज्वाला में तप-तपकर
कंचन हुए खरे

क्यों तू दु:ख से वृथा डरे!
बन कोल्हू का बैल निरन्तर क्षण-सुख हेतु मरे!

संस्कृति टकराव

स्नेह ठाकुर

मेरी आँखों से आँसू बहते ही जा रहे थे, रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। सोच नहीं पा रही थी कि क्या ये कभी रुकेंगे भी या नायग्रा फॉल के पानी की तरह धड़ाधड़ गिरते ही जायेंगे।

सोलह साल की जिन्दगी में याद नहीं आता कि क्या कभी भी किसी भो बात के लिए इतना रोई थी।

आज दो साल बाद फिर आँखों से झरना फूट पड़ा। इस छोटी-सी ज़िन्दगी में मैंने जो देखा-सुना वह आदमी की औसत ज़िन्दगानी से कहीं ज़्यादा है।

अभी तक जिस आस की डोर पकड़े हुए थी वह कच्चे धागे की तरह चटक कर टूट गई और मुझे एक ऐसे छोर पर छिटक गई कि क्या मैं वहाँ से कभी उबर पाऊँगी!

दो संस्कृतियों का टकराव मैंने देखा ही नहीं स्वयं भुगता भी है। पर क्या बाप जो जनक है, जिसके बीजांकुर से कन्या का शरीर निर्मित होकर उसी के संरक्षण में पलता-बढ़ता, पल्लवित-पुष्पित होता है, इतना क्रूर हो सकता है, ऐसा तो मेरी सोच से भो कोसों परे था।

बचपन में नानी-दादी कंस की कथाएँ बताया करती थीं, पर यह तो कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि उन कथाओं को कभी अपने सामने घटित होते देखूँगी। और फिर कंस ने तो दूसरे की नवजात कन्या को मारना चाहा था पर इस बाप ने तो स्वयं की जायी कन्या को सोलह बरस तक पाल-पोस कर मारा है। काश! यह बाप कंस की तरह उसे पैदा होते ही मार डालता। कंस ने तो अपनी जीवन-रक्षा हेतु यह कुकर्म करने की ठानी थी पर इस ने तो अपने अहं के लिए, अपनी तथाकथित मूँछों की इज़्ज़त के लिए यह कुकृत्य किया।

अभी-अभी शुरू में मैंने कहा था कि दो संस्कृतियों का टकराव मैंने देखा ही नहीं स्वयं भुगता भी है... नहीं! नहीं! यह गलत है - माँ-बाप से टकराव की एक सीमा होती है। मैंने तो रूबी के मुकाबले में उस सीमा तक तो क्या, अब देखा जाये तो कुछ भी नहीं देखा-भुगता। हाँ! एक समय तक ज़रूर सोचती थी कि मेरे साथ सीमा का अतिरेक हो रहा है। मेरे माँ-बाप मुझे मेरी जिन्दगी मेरे ढंग से नहीं जीने दे रहे हैं, उसमें जब-तब दखलदांजी करते रहते हैं। मेरी कनेडियन बनने की अभिव्यक्ति को झकझोरा जा रहा है, अब यह सोचकर हँसी आती है कि मुझे शिकायत थी कि मुझे कनेडियन नहीं बनने दिया जा रहा है और जो कनेडियन ह वो तो कनेडियन हैं ही अलबत्ता उन्हें भी शिकायत थी कि माँ-बाप उन्हें उनकी जिन्दगी नहीं जीने दे रहे हैं, बिला वजह हस्तक्षेप करते रहते हैं। आज लगा कि गोया यह शिकायत किसी विशेष देश या संस्कृति के माता-पिता की अपेक्षा अधिकतर इस उम्र के दौर की शिकायत है। पर जो रूबी के साथ हुआ है वह तो वास्तव में सीमा का अतिक्रमण ही नहीं, वह तो सीमाविहीन हुआ है। जन्मदाता ही काल बन कर उसे ग्रस लेता है! बिडम्बना, घोर बिडम्बना।

आज कोर्ट का फैसला सुनाया गया है। जज ने मिस्टर चौधरी को रूबी की हत्या के अपराध में उम्र क़ैद की सजा दी है। जज ने हिक़ारत से उन को देखते हुए सज़ा सुनाई थी।

जज ने कहा कि, 'मैं जानता हूँ और यह समझ सकता हूँ कि जब भी एक देश के व्यक्ति दूसरे देश में रहने जाते हैं, विशेषरूप से पूरब की संस्कृति में जन्में पलने-बढ़ने वाले व्यक्ति पश्चिमीय संस्कृति वाले देशों में रहने आते हैं तो दोनों देशों की संस्कृतियों में कुछ न कुछ अलगाव, विसंगतियाँ अवश्य पाते हैं। यहाँ तक कि यूरोपीय देशों से भी जब लोग नार्थ अमेरिका में प्रवासी बन कर रहने आते हैं तो वो भी अनेक समानताओं के साथ ही साथ कुछ असमानताओं का भी अनुभव करते हैं। यह स्वाभाविक है कि हरएक देश की बोलचाल, रहन-सहन, रीति-रिवाज़ पूर्णतः एक जैसे नहीं होते।'

'जब भी व्यक्ति एक देश से दूसरे देश जाता है, वह अपने साथ अन्य सामानों के साथ-साथ एक अदृश्य सूटकेस भी ले आता है जिसमें उसकी संस्कृति, उसका धर्म, उसके समाज के रीति-रिवाज़ और पुरानी आदतें ठसाठस भरी होती हैं। मैं यह मान भी लूँ कि इस अदृश्य सूटकेस का सामान सपेरे की पिटारी में बन्द साँप की तरह, जरा-सी ढील होते ही सिर उठा कर रेंगने लगता है,

पर यह मानने को तैयार नहीं हूँ कि कोई भी पिता अपनी 'टीनेज़र' लड़की की छोटी-छोटी समस्याओं से जूझने की जगह, उनका समाधान खोज़ने की जगह, उनसे उचित सामन्जस्य बैठाने की जगह, उसका गला घोंटना ही, उसे मौत के घाट उतारना ही एकमात्र पर्याय मानता है।'

जज ने अपना 'जजमेण्ट' पढ़ते हुए बात आगे बढ़ाते हुए कहा, 'दो पीढ़ियों की विचार-धारा का टकराव तो सार्वदेशिक व सार्वकालिक है। अलग-अलग देशों की दो पीढ़ियाँ तो छोड़ ही दीजिये, एक ही देश की दो पीढ़ियों में टकराव होता है। और आजकल की नई पीढ़ी तो अपने वांछित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अत्यधिक जागरूक है। अब वो ज़माना लद गया जब बच्चे आँख-कान मूँदकर बड़ों की हरएक बात का पालन करते थे। अब उन्हें तर्कसंगत बात से तो आप कुछ समझा सकते हैं, पर बिना किसी न्यायसंगत तर्क के, सिर्फ़ आज्ञा शिरोधार्य करने के लिए मज़बूर नहीं कर सकते हैं। शायद कुछ समय के लिए वे मज़बूरी में आपकी बात मान भी लें, पर अमूमन वे आप की बात से कन्विन्स हुए बिना ज़्यादा समय तक उस पर अमल करने वाले नहीं हैं। प्यार से और तर्क से समझाई हुई बात तो उन पर असर कर सकती है, पर ज़बर्दस्ती ठोकी हुई बात ज़्यादा देर नहीं टिकती। कुछ माँ-बाप की पीढ़ी इस 'न' या इस 'अवज्ञा' के लिए तैयार नहीं है। विशेषरूप से दूसरी संस्कृति से आई पीढ़ी के कुछ लोग दोनों संस्कृतियों में सामन्जस्य बैठाने की जगह, दोनों की अच्छी बातें ग्रहण करने की जगह, सिर्फ़ और सिर्फ़ अपनी ही मान्यताएँ अपने बच्चों पर येन-केन-प्रकारेण थोपना चाहते हैं। वे अपनी कुछ धारणाएँ अपने में कुछ इस तरह से समेटे हुए हैं, और उन्हें बिना तर्क की कसौटी पर कसे, बच्चों से मनवाना चाहते हैं; या बल्कि उन पर थोपना चाहते हैं, जो यहाँ पले-बढ़े बच्चे घुटक नहीं पाते हैं। ये बच्चे माँ-बाप की मान्यताओं को बिना तर्क की कसौटी पर कसे, उन्हें अपनी मान्यतास्वरूप मान, अपनी समझ में यह गरल कण्ठ में अटकाये रख जीवन-निर्वाह करते रहने के लिए तैयार नहीं हैं। शिव ने देवताओं की सहायतार्थ विष पी लिया था और वह गरल कण्ठ में समा तब से नीलकण्ठ बन गये, पर सृष्टि का हर बच्चा शिव जैसा महान नहीं हो सकता वो तो कोई विरला ही हो तो हो। अन्ततः ये मान्यताएँ पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के मध्य विकराल टकराव का कारण बनती हैं।

इतनी गम्भीर बात के बीच भी मुझे हँसी आ गई यह सोचकर कि जज साहब भगवान शिव का उदाहरण दे बैठे। मेरी दादी ने मुझे सागर-मंथन वाला किस्सा सुनाया था कि किस तरह शिव जी ने ज़हर को अपने गले में अटका लिया था और तभी से वह नीलकण्ठ भी कहलाने लगे थे।

हँसी के साथ-साथ यह सोचकर आश्चर्य भी हुआ कि जज साहब ने चाहे इस केस के लिए हो या वैसे ही ज्ञान या जिज्ञासावश, उन्होंने दूसरी संस्कृति के अध्ययन का प्रयास अवश्य किया है। उदाहरण यहाँ पूर्णरूपेण सटीक बैठे न बैठे पर बातें उन्होंने पते की कही हैं।

जब वापिस मेरा ध्यान जज की बातों पर गया तो वे कह रहे थे कि, 'मिस रूबी चौधरी ने ऐसी कोई बड़ी भारी गलती नहीं करी थी जिसकी उसे इतनी बड़ी सजा दी गई। उससे इस धरती पर रहने का हक़ ही छीन लिया गया। उसे मौत के घाट उतार दिया गया, बाप ने उसकी निर्मम हत्या कर डाली। वैसे वास्तव में मिस रूबी की गलती है भी या नहीं, इस विचार-धारा का उत्तर कुछ भी हो, इसके बावजूद, किसी को भी किसी की हत्या करने का अधिकार तो है ही नहीं।'

'मैं मानता हूँ कि बच्चों को भी यह बात समझनी चाहिये कि उनके माता-पिता की आकांक्षाएँ, आशाएँ, अपने बच्चों के प्रति सुरक्षा की भावना और उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना से ही उत्पन्न होती हैं, पर यदि नासमझी में, उम्र के इस दौर में, बच्चे बात न मानें, आपकी बातें उनके गले के नीचे से न उतरें तो क्या यह उचित है कि आप उनका गला ही काट दें! बच्चे तो बच्चे ही हैं, नासमझ हैं, पर वयस्क तो परिपक्व हैं।'

'उस बच्ची का ऐसा क्या कसूर था यह जज के रूप में तो छोड़ ही दीजिये, एक पिता के रूप में भी मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। रूबी तो एक नॉर्मल टीनज़र कन्या थी। जैसे दो साल के छोटे-छोटे बच्चों के लिए यह कहावत मशहूर है कि ये जिज्ञासा से पूर्ण 'टेरिबल टूज़', 'टूबल टूज़' की अवस्था से गुज़र रहे हैं, वैसे ही टीनेज़र भी वयः-संधि की ऐसी अवस्था से गुज़र रहे होते हैं जबकि शारीरिक और मानसिक दोनों ही रूप से ना तो वे बच्चे ही रह जाते हैं और ना ही पूर्ण वयस्क बन पाते हैं। इस अवस्था में जहाँ उन्हें माँ-बाप के गाइडेन्स की, उचित मार्गदर्शन की, संवेदना की आवश्यकता है, वहाँ एक टीनेज़र लड़की की सिर्फ़ इसलिए नृशंस हत्या करना कि वह दूसरी टीनेज़र बच्चियों की तरह

बाहर जाना चाहती है, श्रृंगार करना चाहती है, अपनी सहेलियों से फ़ोन पर बात करना चाहती है, आदि बातों के लिए!'

जज ने आगे कहा कि, 'सभ्य देशों में किसी को भी किसी की भी जान लेने का अधिकार नहीं है। जैसा कि सारे सबूतों से प्रमाणित हो गया है कि यह हत्या 'ऑनर किलिंग' के तहत की गई है। मैं यह समझने में असमर्थ हूँ कि एक बच्ची की हत्या करके आप किस 'ऑनर' की रक्षा कर रहे हैं! क्या जिस बच्ची को आपने जन्म दिया है उसकी रक्षा करना आपका धर्म नहीं है? सोलह वर्षीय रूबी की जान-बूझकर, सही दिमाग़ से, षडयंत्रपूर्वक योजना बना कर इसलिए हत्या की गई कि वह अपने पिता के, उनकी तथाकथित कल्चर, संस्कृति सम्बन्धित बनाये गये नियम-क़ायदों के मुताबिक नहीं चल रही थी। इस उम्र के अधिकांश बच्चे माँ-बाप द्वारा बनाये गये रेगुलेशन्स, नियमों का विरोध करते हैं तो इसका मतलब यह नहीं कि उन्हें मौत के घाट उतार दिया जाये।'

'यद्यपि कि बच्चों की रुचि, उनके उद्देश्य, उनकी अपेक्षाएँ माता-पिता से भिन्न हैं पर उचित हैं, तर्कसंगत हैं, गलत नहीं हैं तो हमें उन पर अपनी रुचियाँ, अपनी आकांक्षाएँ, अपनी अपेक्षाएँ, अपनी मान्यताएँ, चाहे वो हमारी दृष्टि में कितनी ही महान क्यों न हों, उन्हें बच्चों पर लाद कर उनके व्यक्तित्व विकास में बाधा नहीं बनना चाहिये। जहाँ उनके गलत कदमों को रोकना अभिभावकों का फर्ज़ है, वहीं बच्चों की उचित माँगों को, उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास को ध्यान में रखना भी अभिभावकों का कर्त्तव्य है, चाहे वे उनके विचारों से मेल खाते हों या नहीं। हम वयस्क अपना व्यक्तित्व जी रहे हैं, हमें बच्चों को उनके व्यक्तित्व को उन्हें जीने देने का हक़ देना भी हमारा ही कर्त्तव्य है।'

और इन शब्दों के साथ ही जज ने उम्र क़ैद की सज़ा सुना, कोर्ट की कार्यवाही की समाप्ति घोषित कर दी।

कोर्ट क्लर्क ने 'ऑल राइज़' की घोषणा की। सब यथास्थान खड़े हो गये और न्यायाधीश अपनी कुर्सी से उठ कर अपने चेम्बर में चले गये।

कोर्ट में छाया सन्नाटा थमा न रहा, छिन्न-भिन्न हो गया। लोग कमरे से बाहर निकलने लगे।

माँ ने मेरा हाथ पकड़ा हुआ था। मेरी हथेली उनकी हथेली में पसीज़ रही थी। किसी और समय यदि माँ ने मेरा हाथ इस तरह पकड़ा होता तो मैं भुनभुना जाती, 'लो, मुझे कोई छोटी बच्ची समझ रखा है, मेरी मित्र-मण्डली क्या कहेगी!', पर आज....आज माँ की वात्सल्यता में पगी यही पसीज़ी मुठ्ठी मुझे सांत्वना दे रही है, भविष्य के प्रति आश्वासित कर रही है। इसी बीच जब पिता ने मेरा दूसरा हाथ पकड़ा तो ऐसा लगा जैसे मेरे ऊपर सुरक्षा-कवच डाल दिया गया है। मैं सचमुच दोनों के बीच छोटी बच्ची बन गई थी - इस ख़बर से बेख़बर कि कौन मुझे उस अवस्था में देख रहा है। बल्कि यूँ कहूँ कि मैं चाहती थी कि मुझे इस हालत में मित्र-मण्डली ही क्या, हर कोई देखे; और देखे और जाने कि पिता का यह रूप होता है, संरक्षक का रूप होता है, कोर्ट में दिखे भक्षक का नहीं।

न माँ का हाथ छोड़ पा रही थी न पिता का। शायद उस दिन ही, बल्कि उसी क्षण मैं उम्र की कई सीढ़ियाँ पार कर गई। लगा यकायक परिपक्वता ने अपना साम्राज्य मेरे मस्तिष्क की शिराओं में एक जाल की तरह बिछा दिया।

जज की बातों का भी असर हुआ था। न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठा न्यायकर्त्ता यद्यपि कि निष्पक्ष रूप से घटना को हर पहलू से देख रहा था, फिर भी एक बेटी के पिता का रूप भी उन आँखों से बरबस झाँक उठता था। निष्पक्ष होना एक बात है और संवेदनहीन होना अलग बात है।

आज लगा कि मेरे माँ-बाप कितने सहनशील हैं। जिन बातों के लिए रूबी की हत्या की गई, उन्हीं सब बातों पर तो मैं भी माँ-पापा से लड़ती रहती हूँ। और मैं ही क्यों सभी सहेलियाँ भी तो यही सब बातें डिस्कस करती हैं। हम सभी की तक़रीबन एक जैसी ही माँ-बाप की पीढ़ी के प्रति शिकायतें हैं। हमारी वय में से कोई न कोई अपनी शिकायतों का पुलिन्दा खोले ही रखता है। आज लगा कि कितनी नासमझ, बेकार की बातों पर ही हम तुनतुनाये रहते हैं, लड़ते-झगड़ते हैं, गुस्से में

भर दरवाज़े के पलड़े धड़ से बन्द कर अपने कमरे में घुस जाते हैं और अपना सिर धुनते हैं कि माँ-बाप को इतनी-सी बात भी समझ में नहीं आती है।

आज मैंने अपने अस्तित्व को माँ-बाप के 'शूज़' में डाला तब लगा कि शायद हम ही नहीं समझ रहे हैं। यह हमारी अल्प-वयस्कता ही हमें दुःख दे रही है।

आज जज की बातों ने मुझे भी झकझोर कर जगा दिया।

कभी-कभी माँ-बाप द्वारा कही गई जो बात आपकी समझ में नहीं आती, वही बात यकायक दूसरों द्वारा कही जाने पर आपके मस्तिष्क के बंद दरवाजे खोल आपकी समझ की परिधि के भीतर स्वयं ही बिन प्रयास दनदनाती हुई आ घुसती है।

बचपन में जब भी मैं शैतानी करती थी दादी प्यार-भरी झिड़की देकर माफ़ कर देती थीं। जब थोड़ी बड़ी हुई तो दादी के इसी स्वाभाव पर मैं हँस कर कहती थी, 'दादी आप बड़ी अच्छी हैं, माफ़ कर देती हैं, 'और दादी बड़े लाड़ से मुझे गोदी में भर अपनी प्रिय उपदेशात्मक पंक्तियाँ दोहरा दिया करती थीं, 'क्षमा बड़न को चाहिये, छोटन को उत्पात।' दादी स्वयं भी गहन विचारों वाली बड़ी अच्छी कवयित्री थीं। यद्यपि उस समय मुझमें उनकी कविता की गहराई में डूबने की ना तो क्षमता थी, ना ही सामर्थ्य। आज भी उन्हें समझने के लिए मेरे पास अत्यधिक योग्यता या अनुभव नहीं है, फिर भी अब जिस शिद्दत से उसे महसूस करती हूँ वह निःसंदेह पहले की अपेक्षा कहीं अधिक है। दादी की एक कविता जो इस दौरान मुझे कंठस्थ-सी हो गई है, वह उनकी परिपक्वता, स्त्रीत्व, ममत्व, दूर-दर्शिता की साक्षी है -

'रखना मुझे सचेत'

ढोती रही छिले कंधों पर मुर्दा इतिहास
दो मुझे वर वर-दात्री होऊँ मुक्तपाश
नीले नभ के शतदल पर बैठी शारदे माँ
रखना सचेत मुझे कर्तव्य के प्रति सदा।
कर दे सराबोर मुझे
अपने वीणा-स्वर-अमृताक्षर-निर्झर में
हे विश्व-हंस-वाहिनी
बीत राग-काल-लहरियाँ
चली आ रहीं फेन उगलती
फन फैलाए व्यालों-सी।
आ गई मेरे जीवन की संध्या
लीप गुलाल से पूर्व-जीवन-रवि-पथ
जला तू पश्चिम-जीवन में पहला अखण्ड दीप
उज्ज्वल परिहारों से काटूँ तिमिर-घेरा
दूँ कालिख का एक-एक कण मिटा।
रखना मुझे सचेत
जीने दूँ सतान को जीवन का वह क्षेत्र
जो है उनकी अभिलाषाओं की धुरी
न कि अपनी चाहतें और ज़िन्दगी
जो न कर सकी मैं पूरा कभी
लादूँ उन पर वह बोझ सभी।
रखना मुझे सचेत
जाना है उन्हें दूर भविष्य की डगर
कर सकूँ उनकी सहायता इस क़दर
पहचान सकूँ वर्तमान में उनके गलत कदम
देना मुझे इतना औदार्य
रख सकूँ धैर्य
धीमी गति के प्रति सौहार्द्य।

रखना मुझे सचेत
देना मुझे सयानेपन का संकेत
उड़ा सकूँ कब हँसी में उनकी नादानियाँ
और बढ़ाना है दृढ़ता से कब हाथ उन्हें
सँभालने उनके उन आवेगों को
जो करते हैं भयभीत उन्हें
है नहीं जिन पर काब उन्हें।
रखना मुझे सचेत
होऊँ न कभी अचेत
सुन सकूँ व्यथा उनके हृदय की अनकही
चाहे हो क्रोध के कोलाहल में डूबी
या ज्वार आने से पहले गुमसुम शांत सागर में
बींध सकूँ अन्तरतम को उनके
निविड़-तम ज्योति-किरण बींधे जैसे
लाँघ जाऊँ खाई माँ की गरिमा से
पाट दूँ विस्तृत दरी स्नेह-सिक्त-ऊष्मा से।
रखना मुझे सचेत
आये जब भी वाणी में तेज
हो मुखर स्वर मेरा ओज भरा
करने उनकी प्रसंशा
न हो उसमें कभी नकारात्मकता
ताकि हों खड़े वो आत्म-विश्वास के साथ
पकड़े संस्कारों की लाठी की मुठिया।
रखना मुझे सचेत
सीचूँ उनके हृदय की अमर-बेल
बन ममता की एकनिष्ठ प्रतिमा
बना दूँ उनका अन्तर प्यार की अन्नपूर्णा
बाँटे उसमें से चाहे वो कितना
कभी न हो रिक्त कोष उनका
तब खींच सकूँ उनसे आँचल अपना
उड़ने दूँ उनको गगन में विहग-सा।
दो मुझे ऐसी निस्पृह शक्ति माँ
न काटूँ उनके पर मैं ममता से
जिससे बढ़ सकें वो दृढ़ता से
करने साकार स्वयं का सपना
करने साकार स्वयं का सपना।

अब लगता है कि शायद इसीलिए परमात्मा ने बड़ों को सहनशील बनाया है, क्योंकि अल्पायु में छोटे तो अज्ञानतावश नासमझी में बहुत से काम करेंगे पर बड़े उन्हें सहेजते-सँभालते हुए, उनका मार्ग-दर्शन करते हुए, उन्हें उस घेरे से निकालने में सहिष्णुता से प्रयत्नशील रहेंगे।

और इसी समय एक और विचार कौंधा कि यदि बड़े क्षमाशील, सहिष्णु न हों तो दुनियाँ ही ख़त्म हो जायेगी। रूबी के पिता जैसे कंस सब कन्याओं को मार डालेंगे तो सृष्टि की उत्पत्ति कैसे होगी!

मर्द

चित्रा मुद्गल

"आधी रात में उठकर कहाँ गयी थी?" शराब में धुत्त पति बगल में आकर लेटी पत्नी पर गुर्राया।
आँखों को कोहनी से ढाँकते हुए पत्नी ने जवाब दिया, "पेशाब करने।"
"एतना देर कइसे लगा?"
"पानी पी-पी कर पेट भरेंगे तो पानी निकलने में टैम नहीं लगेगा?"
"हरामिन, झूठ बोलती है? सीधे-सीधे भकुर दे किसके पास गयी थी?"
पत्नी ने सफाई दी- "कऊन के पास जाएँगे मौज मस्ती करने! माटी-गारा ढ़ोती देह में पिरान हैं?"
"कुतिया…"
"गरियाब जिन, जब एतना मालुम है किसी के पास जाते हैं तो खुद ही जाके काहे नहीं ढूँढ़ लेते?"
"बेसरम बेहया… जबान लड़ाती है। आखिरी बार पूछ रहे हैं – बता, किसके पास गयी थी?"
पत्नी तनतनाती उठ बैठी- "तो लो सुन लो, गये थे किसी के पास। जाते रहते हैं। दारू चढ़ाके तो तू किसी काबिल रहता नहीं…"
"चुप्प हरामिन, मुँह झौंस दूँगा जो मुँह से आँय बाँय बकी। दारू पीके मरद मरद नहीं रहता?"
"नहीं रहता।"
"तो ले देख, दारू पीके मरद मरद रहता है या नहीं !" मरद ने बगल में लुढ़का पड़ा लोटा उठाया और औरत की खोपड़ी पर दे मारा!

रेत मैं हूँ जमुन जल तुम

केदारनाथ अग्रवाल

रेत मैं हूँ--जमुन जल तुम।
मुझे तुमने
हृदय तल से ढँक लिया है
और अपना कर लिया है
अब मुझे क्या रात--क्या दिन
क्या प्रलय--क्या पुनर्जीवन।
रेत मैं हूँ --जमुन जल तुम।
मुझे तुमने
सरस रस से कर दिया है
सब दुख-दर्द हर लिया है
अब मुझे क्या शोक-क्या दुख
मिल रहा है सुख--महासुख

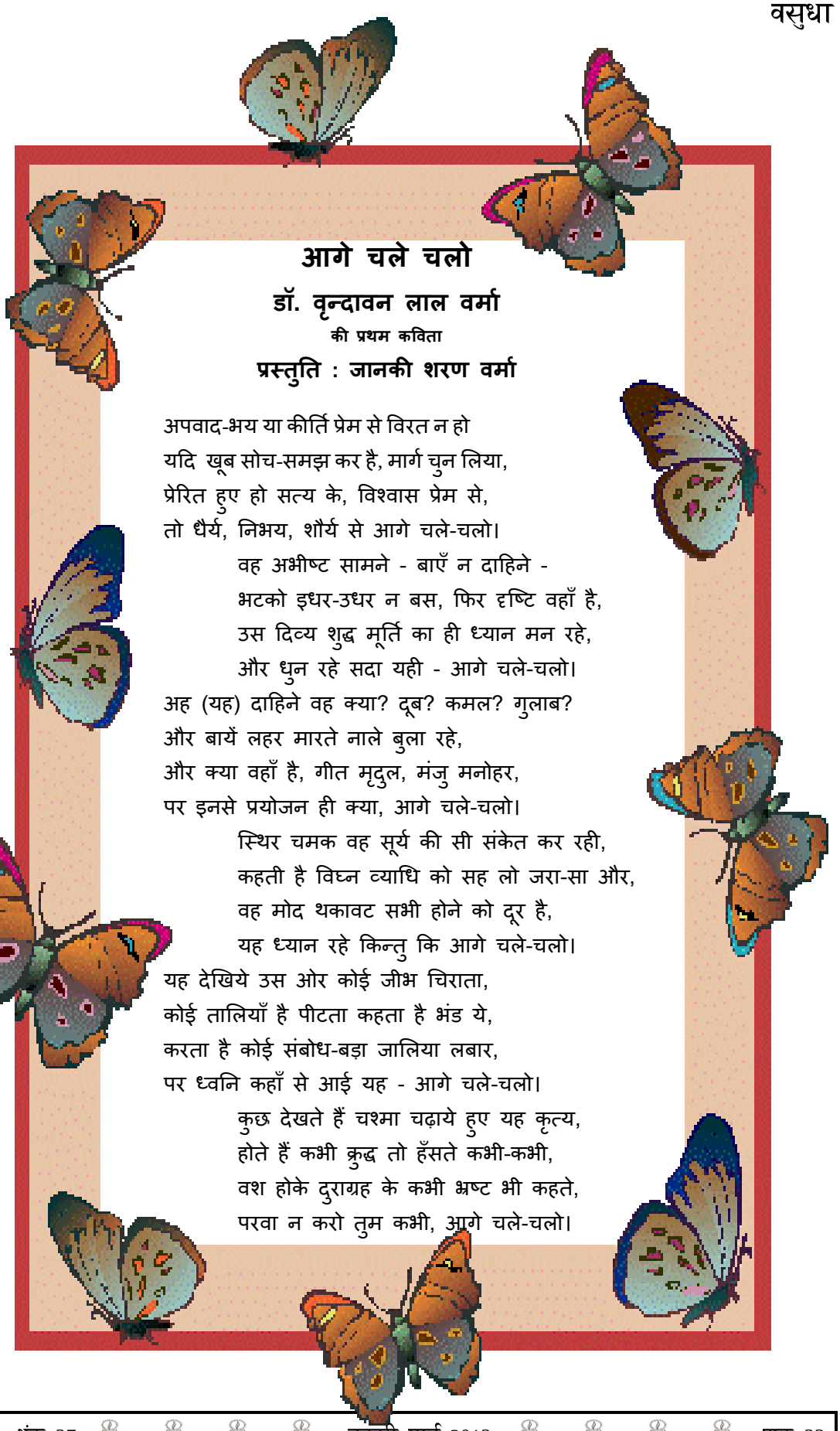

आगे चले चलो

डॉ. वृन्दावन लाल वर्मा

की प्रथम कविता

प्रस्तुति : जानकी शरण वर्मा

अपवाद-भय या कीर्ति प्रेम से विरत न हो
यदि खूब सोच-समझ कर है, मार्ग चुन लिया,
प्रेरित हुए हो सत्य के, विश्वास प्रेम से,
तो धैर्य, निभय, शौर्य से आगे चले-चलो।

वह अभीष्ट सामने - बाएँ न दाहिने -
भटको इधर-उधर न बस, फिर दृष्टि वहाँ है,
उस दिव्य शुद्ध मूर्ति का ही ध्यान मन रहे,
और धुन रहे सदा यही - आगे चले-चलो।

अह (यह) दाहिने वह क्या? दूब? कमल? गुलाब?
और बायें लहर मारते नाले बुला रहे,
और क्या वहाँ है, गीत मृदुल, मंजु मनोहर,
पर इनसे प्रयोजन ही क्या, आगे चले-चलो।

स्थिर चमक वह सूर्य की सी संकेत कर रही,
कहती है विघ्न व्याधि को सह लो जरा-सा और,
वह मोद थकावट सभी होने को दूर है,
यह ध्यान रहे किन्तु कि आगे चले-चलो।

यह देखिये उस ओर कोई जीभ चिराता,
कोई तालियाँ है पीटता कहता है भंड ये,
करता है कोई संबोध-बड़ा जालिया लबार,
पर ध्वनि कहाँ से आई यह - आगे चले-चलो।

कुछ देखते हैं चश्मा चढ़ाये हुए यह कृत्य,
होते हैं कभी क्रुद्ध तो हँसते कभी-कभी,
वश होके दुराग्रह के कभी भ्रष्ट भी कहते,
परवा न करो तुम कभी, आगे चले-चलो।

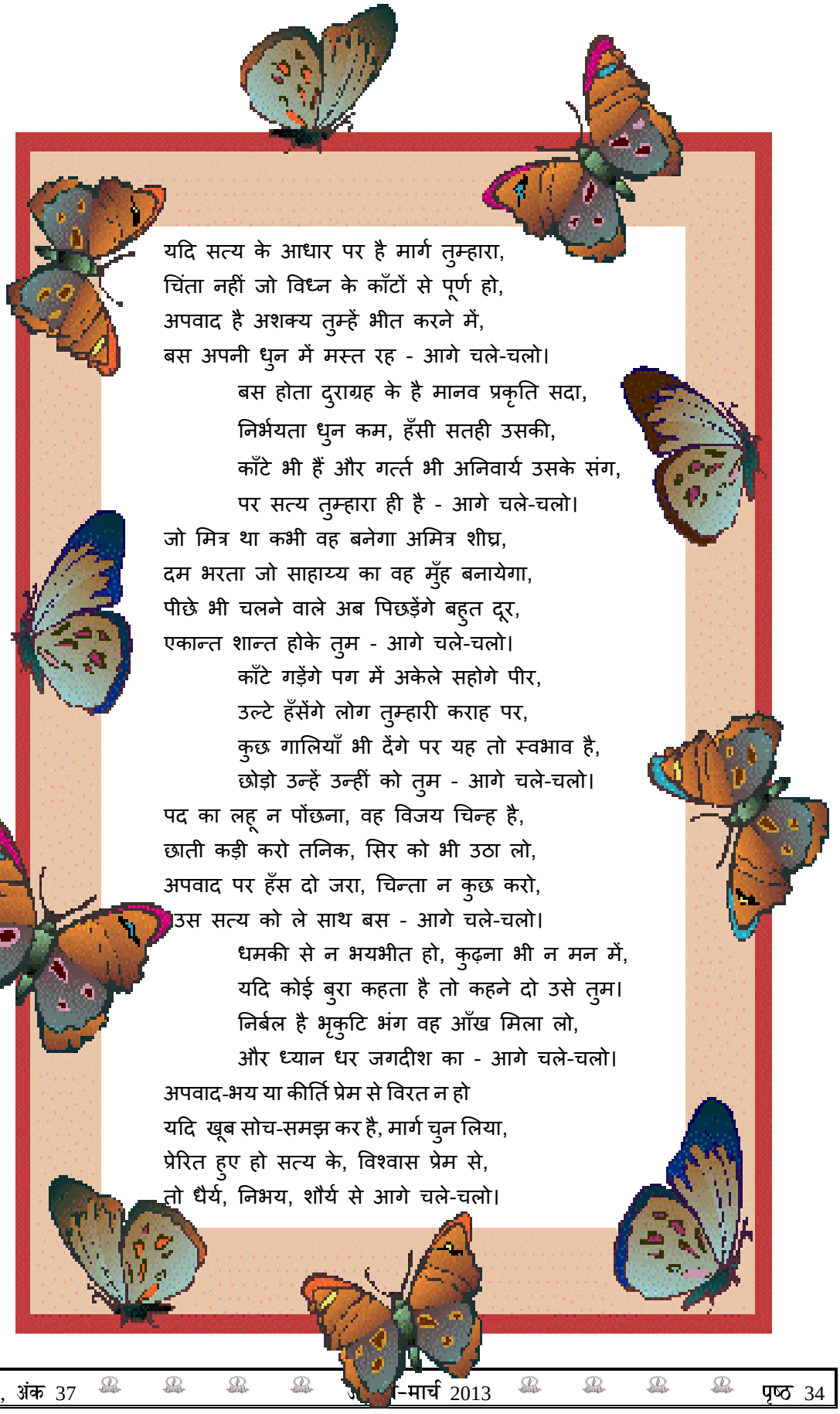

यदि सत्य के आधार पर है मार्ग तुम्हारा,
चिंता नहीं जो विध्न के काँटों से पूर्ण हो,
अपवाद है अशक्य तुम्हें भीत करने में,
बस अपनी धुन में मस्त रह - आगे चले-चलो।

बस होता दुराग्रह के है मानव प्रकृति सदा,
निर्भयता धुन कम, हँसी सतही उसकी,
काँटे भी हैं और गर्त्त भी अनिवार्य उसके संग,
पर सत्य तुम्हारा ही है - आगे चले-चलो।

जो मित्र था कभी वह बनेगा अमित्र शीघ्र,
दम भरता जो साहाय्य का वह मुँह बनायेगा,
पीछे भी चलने वाले अब पिछड़ेंगे बहुत दूर,
एकान्त शान्त होके तुम - आगे चले-चलो।

काँटे गड़ेंगे पग में अकेले सहोगे पीर,
उल्टे हँसेंगे लोग तुम्हारी कराह पर,
कुछ गालियाँ भी देंगे पर यह तो स्वभाव है,
छोड़ो उन्हें उन्हीं को तुम - आगे चले-चलो।

पद का लहू न पोंछना, वह विजय चिन्ह है,
छाती कड़ी करो तनिक, सिर को भी उठा लो,
अपवाद पर हँस दो जरा, चिन्ता न कुछ करो,
उस सत्य को ले साथ बस - आगे चले-चलो।

धमकी से न भयभीत हो, कुढ़ना भी न मन में,
यदि कोई बुरा कहता है तो कहने दो उसे तुम।
निर्बल है भृकुटि भंग वह आँख मिला लो,
और ध्यान धर जगदीश का - आगे चले-चलो।

अपवाद-भय या कीर्ति प्रेम से विरत न हो
यदि खूब सोच-समझ कर है, मार्ग चुन लिया,
प्रेरित हुए हो सत्य के, विश्वास प्रेम से,
तो धैर्य, निभय, शौर्य से आगे चले-चलो।

शिक्षा का मूल्य

इला प्रसाद

प्रौढ़-शिक्षा की कक्षाओं में मैंने उन दिनों नया-नया पढ़ाना शुरू किया था। सुबह आठ बजे से कक्षाएँ आरम्भ होतीं। मेरे लिए गर्मी की छुट्टियों का यह सार्थक उपयोग था।

अठारह से लेकर अट्ठाइस वर्ष की उम्र की छात्रायें इन कक्षाओं के माध्यम से बिहार बोर्ड की माध्यमिक परीक्षा के लिये तैयार हो रही थीं। पचास छात्राएँ क्लास में। सभी आदिवासी। राँची और उसके आसपास के क्षेत्रों से आई हुई। कुछ ऐसी कि कभी स्कूल का मुँह नहीं देखा था, इससे पहले। कुछ ने बीच में पढ़ाई छोड़ दी थी। इन सबको भौतिकी जैसे कठिन माने जाने वाले विषय को पढ़ाने का दायित्व मेरा। कभी भौतिकी के प्रारम्भिक ज्ञान से आरम्भ कर गणित भी समझाना होता क्योंकि उनमें से कई को दशमलव के जोड़घटाव भी नहीं आते थे। मैं पूर्ण मनोयोग से उन्हें विषय समझाने की कोशिश करती - लेकिन अक्सर ही खीझ जाती जब पहली पंक्ति में चौथी बेंच पर बैठी उस छात्रा को हर रोज सोता पाती। मेरी तमाम कोशिशें बेकार रहीं - उसकी बेंच के करीब बेंच थपथपाकर उठाने की कोशिश, जोर से बोलना... किसी चीज का असर ही न होता। वह हर रोज़ जैसे सोने के लिये ही क्लास में आती थी। आख़िर एक दिन मेरा धीरज छूट गया-

“यह क्लास में आती क्यों है, जब इसे सोना है सारे वक्त? घर पर सोया करे।" मैंने बाकी कक्षा की ओर उन्मुख हो कर हवा में प्रश्न उछाला।

“मैडम, ई बहुत थकी रहती है, इसीलिये सो जाती है। हर रोज तीन बजे उठती है, घर का सब काम करती है - पानी लाना, गोबर पाथना, घर लीपना, भात पकाना, सब करके आती है। घर में माँ आउर छोटा भाईहै बहन है। पन्दरह किलोमीटर - इसका घर यहाँ से। सुबह चार बजे चलना शुरू करती है, तब पहुँचती है। थक जाती है।" उसकी बगल की बेंच पर बैठी लड़की ने मेरे प्रश्न का उत्तर दिया।

“लेकिन इस तरह तो पढ़ाई होने से रही। आने की ज़रूरत क्या है?”

“इसको यहाँ आके पढ़ने का जो पैसा मिलता है, उसी से घर का खर्चा चलता है, मैडम। घर में खाने को भी नहीं है।"

अनगिन यात्राओं में

विजय सिंह नाहटा

अनगिन यात्राओं में
याद रह जाती एकाध यात्रा
जिसके अनगिन दृश्यों के वातायन से
याद रहता निपट एक दृश्य
उस दृश्य के अनेकों चित्राम के उदर से
गूँजता इकलौता चित्र
अनगिन रातों से पृष्ठों में
चमकता कोई पृष्ठ अकेला
रात के प्रहरों में से झाँकता
कोई उदासीन प्रहर
उस प्रहर में झिलमिलाता शब्द-सा निमिष.

अक्षरों का आकाश

पद्मश्री डॉ श्याम सिंह शशि

आज फिर हताश होते हो
मेरे मन,
तुम तो दूसरों को
श्वास देते आए हो
मुर्दा मुस्कानों में
विश्वास भरते आए हो
नित नवीन आस का
इतिहास रचते आए हो

अभी तो तुम्हारे पास
शेष दीर्घ श्वास है
अक्षरों-शब्दों का असीम आकाश है
आज फिर निराश
क्यों होते हो मेरे मन,
तुम तो दूसरों को
श्वास देते आए हो
मुर्दा मुस्कानों में
विश्वास भरते आए हो.

हिंदी मानसिकता का निर्माण

आशा आने वाली पीढ़ी से

डॉ. विद्यानिवास मिश्र

मैं जब १९४५-४६ से लेकर आज तक की हिंदी का स्मरण करता हूँ कि इसके साथ जुलूस में पीछे मैं भी रहा हूँ तो मुझे दो चीजें बड़ी साफ़ दिखाई देती हैं। हिंदी भाषा एक ऐसी भाषा है, जिसके ऊपर दबाव पड़ता है, उसमें उछाल आता है, दबाव नहीं पड़ता, तो यह भाषा सो जाती है। सदियों तक इस पर दबाव था। यह राजभाषा नहीं थी। थोड़ी सी रियासतों में कुछ कार्यवाही हिंदी में होती थी, लेकिन जो भी कार्यवाही हिंदी में होती थी, उसकी प्रामाणिकता के बारे में मध्य युग के साहित्यकारों ने पहले जितनी भी अभिव्यक्तियाँ की हैं, आज उसका महत्व हम समझते हैं ख़ास करके अपने देश की म.प्र. की रियासतों में, राजस्थान की रियासतों में हिंदी में जो दस्तावेज़ मिले, उनकी कीमत आज आँकी जा रही है। उनमें कुछ अधिक सही बात है, सही परिप्रेक्ष्य है। जनता की कुछ दूसरी तस्वीर है। तो भी एक शासन की भाषा दूसरी थी और यह दूसरी भाषा थी। उसके पीछे भी कारण एक विचित्र प्रकार का मनोभाव था।

आज लगभग ५०० वर्षों से जो विशेष रूप से हिंदी के क्षेत्र का 'ग्राम स्वराज सपना' जैसा दिखता है, उसके पीछे कारण क्या था? उसके पीछे कारण था टोडरमल के द्वारा एक ऐसी माल व्यवस्था का निर्माण जो केंद्रीकृत व्यवस्था थी। केंद्रीकृत व्यवस्था होने के नाते ही यह फारसी-केंद्रित व्यवस्था थी और इसके कारण शासक और शासित की दूरी थी, जनता को किसी माध्यम को चुनना पड़ता था, जिसके माध्यम से वह शासक के पास पहुँच सकता था। सीधा संवाद समाप्त करने के लिए और एक तंत्रीय शासन व्यवस्था के लिए यह उपाय किया गया। नौकरशाही का यह स्तर पहले नहीं था। इसका प्रमाण आज भी गोवा में मिलता है। गोवा में आज भी एक संस्था है कम्युनिताद। उसका अर्थ है गाँव समुदाय। आज भी उसका महत्व है, क्योंकि वहाँ यह टोडरशाही नहीं पहुँची थी लेकिन जहाँ यह पहुँची थी, वहाँ केंद्रीय माल व्यवस्था थी और गाँव तक केंद्र पहुँचा हुआ था। उसके बावजूद हिंदी ऐसी ऊर्जस्विता के साथ रही कि हिंदी के अधिकांश साहित्य ने नकार दिया कि कोई और सत्ता है।

तुलसीदास के रामचरित मानस में, गीतावली में, कवितावली में, विनयपत्रिका में कहीं तत्कालीन बादशाह का नाम तक नहीं है। इससे बड़ी उपेक्षा, इससे बड़ा नकार कुछ हो नहीं सकता। जैसे तुलसीदास जी कहना चाहते थे कि इस राज सत्ता से बहुत बड़ी राज सत्ता है, जिसके रहते अपने को स्वतंत्र अनुभव करते हैं। उसी की राज सत्ता के अनुकूल अपेक्षा करते हैं। इस प्रकार की ऊर्जा उस युग में उसके बाद भी थी, जिसे हम सामंत युग कहते हैं, उसे हम रीतिकालीन युग कहते हैं। उसके कवियों में भी ऐसी ऊर्जस्विता थी। पद्माकर की कविता में भी संकेत हैं, फिरंगियों के आने के ख़तरे। वहाँ से संकेत शुरू हो जाता है, बहुत पहले संकेत शुरू हो जाता है।

१९०१ में हिंदी में जो प्रथम कविता लिखी गई वह एशिया के जागरण की कविता है। शायद एशिया में तब किसी भाषा में एशिया के जागरण की कविता नहीं लिखी गई होगी, १९०१ में लिखी गई कविता राधाकृष्ण मित्र ने लिखी थी। इसका अर्थ यही है कि जितना भी दबाव था, उतनी अधिक ऊर्जस्विता भी थी। लेकिन जब दबाव कम पड़ जाता है, तब मूल्य होता। एक फ्रांस की कहानी मैंने पढ़ी थी कि जब जर्मन कब्ज़ा कर रहे थे तो कब्ज़ा करने के दो दिन पहले जिस क्षेत्र में आ रहे थे उस क्षेत्र की पाठशाला में फ्रेंच का शिक्षक फ्रेंच पढ़ा रहा था तो लड़के अपनी भाषा में जल्दी पढ़ते नहीं, बड़ी लापरवाही से पढ़ते हैं, अरे यह तो हमें आती ही है, बोलते ही हैं, तो अध्यापक ने विद्यार्थियों से कहा कि बच्चों, परसों से फ्रेंच नहीं पढ़ाई जाएगी। आज पढ़ लो और उसने जब पाठ पढ़ाया तो बड़े मन से बच्चों ने पाठ पढ़ा, उनको फ्रेंच में रस आया और इसके बाद सब लड़के रोने लगे।

अभी छिनी नहीं है हिंदी। छीनने के सारे उपक्रम हो रहे हैं, सारे जाल फेंके जा रहे हैं, सारी कोशिश हो रही है कि अंग्रेज़ी के बिना पीने को पानी नहीं मिलेगा। सब गुलाम हो गए हैं, तुम भी गुलाम हो जाओ या तुममें गुलाम बनाने की

क्षमता हो तो गुलाम बना लो। बड़ी से बड़ी सत्ता जब खाने चलेगी, तो भीतर से इतनी खोखली हो जाएगी, जैसा कि अमेरिका आर्थिक दृष्टि से खोखला हो रहा है, स्वास्थ्य की दृष्टि से खोखला हो रहा है, मानसिक दृष्टि से एकदम विश्रृंखलित हो रहा है। वह क्या खाएगा, कागज़ी नोटों का भूत चढ़ा है वह स्वयं कभी नहीं खा सकता। जिसमें थोड़ी सी भी ऊर्जा बची हुई है, खड़े होने की, तनकर खड़े होने की, इन्कार करने की, अस्वीकार करने की, वे ऐसा प्रतिरोध करेंगे, ऐसा प्रतिरोध करेंगे कि एक दूसरी सृष्टि जन्म लेगी।

वैश्वीकरण का एक दूसरा रूप आएगा जो एक-दूसरे पर आश्रित होने वाला रूप रहेगा। एक-दूसरे को खाने वाला रूप नहीं रहेगा। ऐसी स्थितियाँ जब आती हैं तो आपस में ही उसमें टकराहट होती है और उस भय का समाधान हो जाता है। इस प्रकार की स्थिति विश्व में होगी, लेकिन उसके लिए एक तैयारी तो कहीं-न-कहीं होनी चाहिए। किसी न किसी रूप में छोटे पैमाने पर निरंतर होती तो रहनी चाहिए। मेरे स्व. मित्र लोहिया जी कहा करते थे कि मैं यह सोच रहा हूँ कि जिस दिन इमारत उठाने का हौसला हो, तब ईंट तो कम से कम मिल सके। आज हमको, कम से कम ईंट रख देनी है।

हमारी पीढ़ी के लोगों ने बहुत गलतियाँ की हैं, एक के बाद एक गलतियाँ की हैं और भाषा के प्रश्न पर, राष्ट्रीयता के प्रश्न पर सबसे ज़्यादा गलती की है। हमारी पीढ़ी ने राष्ट्र के लिए संघर्ष किया और राष्ट्र का कोई आकार खड़ा नहीं किया, कोई मूर्त संकल्पना नहीं थी हमारे पास। हमें उधार लिए हुए वादे स्वीकार करने पड़े। अगर हमारी संकल्पना होती, अगर हमारे भीतर ऊर्जा होती तो स्वराज्य की जो गीता गाँधी जी ने तैयार कर रखी थी, उस पर बहस करते, उसमें संशोधन करते और अपने देश की परिस्थिति के अनुरूप, अपने और अपने देश की आकांक्षाओं के अनुरूप कोई दस्तावेज़ बनाते और कहते कि इस हिसाब से शासन चलेगा तो हमें निश्चित ही यह दिन देखने को नहीं मिलता, यह झेलना नहीं पड़ता। लेकिन हमारी गलती थी कि हम स्वाधीनता चाहते थे, उसके लिए लड़े। सबको किनारे रखकर। तिलक के शब्दों में - 'स्वतंत्रता सर्वोपरि थी', महत्त्वपूर्ण थी, लेकिन स्वराज्य का आकार भी महत्त्वपूर्ण था, इसे हमने नहीं सोचा। उसकी रचना हमने नहीं की। अगर की होती तो भाषा सबसे ऊपर थी, भाषा के प्रश्न पर जो संघर्ष हुए वे बड़े छोटे संघर्ष हुए। असली संघर्ष था अँग्रेज़ों जाओ, हम आपस में निपट लेंगे। "आपस में कटेंगे, मरेंगे जो कुछ भी करेंगे पर हम निपट लेंगे आपस में" यह भी कहने का साहस हममें नहीं हुआ कि 'अंग्रेजी इस देश से जाए हम आपस में निपट लेंगे।' तो मामला निपट गया होता, क्योंकि एक संकल्प रहता।

अब आने वाली पीढ़ी यह भूल नहीं दुहराएगी। स्वाधीन राष्ट्र का कोई सक्रिय रूप उन्हें सोचना होगा, इस देश को जोड़ने वाली जो भी विचार धारा है उस की वाहिका जो भी भाषाएँ हैं, उनके बीच क्या संबंध स्थापित हो, उस पर विचार करना होगा। अब तक जो भी विचार आए हैं वे विचार सबके सब धुँधले विचार हैं, अस्पष्ट विचार हैं। स्पष्ट रूप से विचार हुआ नहीं, क्योंकि ऐसी आवश्यकता, ऐसी चुनौती, ऐसा भय उपस्थित नहीं हुआ। भय में सबसे अधिक चेतना जाग्रत होती है, आशंका में ही सारी शक्तियाँ एकाग्र हो जाती हैं। आज हमें शक्तियों को एकाग्र करके इन प्रश्नों पर विचार करना चाहिए। यह केवल गुलाम मानसिकता नहीं है। यह एकदम अज्ञान की मानसिकता है। शिष्टता के प्रति अज्ञान की मानसिकता है, अपने समूचे इतिहास, अपनी समूची जाति, व्यक्तित्व के अज्ञान की मानसिकता है। मगर हम जानते हैं कि हमारा जातीय व्यक्तित्व क्या है? उसमें कितनी चीज़ जुड़ी हुई है, उसमें कितनी झेलने की क्षमता है, कितनी ऊर्जा है? झेल करके भी ऊँचा मान रखने की क्षमता है, तो यह मानसिकता नहीं होती।

मैं इससे सहमत नहीं हूँ कि साहित्य की भाषा अलग है, बोलचाल की भाषा अलग है, राजभाषा अलग है। भाषा की कोठरियाँ नहीं होती, दिमाग की कोठरियाँ नहीं होती कि सब एक दूसरे से जुड़ी हुई होती हैं। द्वार नहीं होता, सब एक ही हैं, क्षेत्र उनका अलग होता है, प्रकार अलग होता है, लेकिन सब एक है। यह असंभव है कि बोलचाल की भाषा से साहित्य की भाषा इतनी दूर चली जाए, यह असंभव है कि बोलचाल की, राजकाज की भाषा दूर नहीं होती है, यह अलग कभी नहीं होती, अलग करने का सोचना भी नहीं चाहिए।

तकनीकी भाषा को भी सरल होना है। भाषा का एक सहज प्रवाह है। उस प्रवाह को समझने के लिए इन सबके भीतर जो शक्ति होती है, समझना चाहिए और जब यह सोचते हैं, तो हमारा दिमाग वैसे ही स्वतंत्र हो जाता है। हर

जगह हम गलत हैं और सही होने के लिए एक ऐसी व्यापकता हमारे मन में होनी चाहिए और एक संपूर्ण इतिहास के साथ ऐसा जुड़ाव होना चाहिए। केवल गौरव का इतिहास ही हमारा इतिहास नहीं है। लोग यह मानते हैं कि ह्रास का युग आ गया है। १०वीं शताब्दी के लोग नहीं समझते थे कि १०वीं शताब्दी के बाद एक बौद्धिक ऊर्जा के विकास का समय आएगा। निरंतर ऊर्जा का विकास हुआ है। एक भावात्मक ऊर्जा के विकास का समय आया। इतना बड़ा महान, भक्ति-साहित्य उसी समय रचा गया।

यह सारा हमारा हिस्सा है, हमारे व्यक्तित्व का हिस्सा है। एक सोने की चिड़िया वाला ही हमारा भारत नहीं है, संपूर्ण भारत हमारा है। ऐसा उत्साह जो देशों का निर्माण कर दे, वह उत्साह भी हमारा अंग है और उसके साथ जुड़ करके आने वाले भविष्य का पूरा नज़ारा है विश्व का, उसको देखते हुए हम जो कोई संकल्प लेंगे तो ये जो प्रश्न है, राष्ट्रभाषा का प्रश्न है कि क्यों हमारे भीतर एक गलत किस्म की मानसिकता आई, यह प्रश्न बहुत छोटे हो जाएँगे और उनका समाधान बहुत ही सरल हो जाएगा।

आपको दिल अपना....

गिरीश पाण्डे

आपको दिल अपना अब थामना है
मेरी ग़ज़लों से अब आपका सामना है.
चिंगारियाँ परोस दीं काग़ज़ पर
समाज पिघले यही कामना है.
सम्पूर्णता को वह देख नहीं पाता
बस इसीलिए रहता अनमना है.
दीवारें बना-बना लिख डालीं
इसके आगे जाना मना है.
कल वही शेर-सा दहाड़ेगा
आज जिसे कहते 'मेमना' है.
परवाज़ों का रियाज़ बनाए रखो
बहुत-सी बुलन्दियों को चूमना है.
खिल कर जी लो इस जीवन में
किसने देखा कि जन्मों में घूमना है.
पेड़-पौधों को बचा कर रखो
इन्हीं संग जीना, झूमना है.
अपने को कभी थका-बूढ़ा मत समझो
उकेरो, जो तुमसे छिपा महामना है.
एक और एक मिले तो अनन्त
बस हाथों को पूरे मन से थामना है.

भारतीय नवजागरण और काशी की नागरीप्रचारिणी सभा

डॉ0 राकेश कुमार दूबे

भारतीय नवजागरण बौद्धिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में व्यापक बदलाव और नवीकरण की वह प्रक्रिया थी जो उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से आरम्भ हुई और जिसने तीव्रता उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ग्रहण की। इस काल ने मानवीय चिंतन, ज्ञान–विज्ञान एवं कला इत्यादि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महान सृजनात्मक प्रयासों को उद्‌बुद्ध किया, और अनेक बड़े चिंतकों, कलाकारों, कवियों, दार्शनिकों, समाज सुधारकों, नेताओं तथा संस्थाओं को जन्म दिया। काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ऐसी ही एक संस्था थी जिसने भारतीय नवजागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को भी दशा एवं दिशा प्रदान की।

आधुनिक भारत के संदर्भ में 18वीं एवं 19वीं सदी का पूर्वार्द्ध इस तरह से विवेचित किया गया है कि 18वीं एवं 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक भारत की स्थिति अत्यंत शोचनीय थी। ऐसी स्थिति में पाश्चात्य देशों से लोगों का आगमन एवं उनकी सभ्यता एवं संस्कृति से सम्पर्क के क्रिया एवं प्रतिक्रिया स्वरुप भारत में नवीन भावों एवं विचारों का उदय हुआ और देश में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, थियोसाफिकल सोसाइटी इत्यादि सामाजिक–धार्मिक आंदोलनों का जन्म। देश के तीन प्रदेशों–बंगाल, महाराष्ट्र और मद्रास में कतिपय छोटे–छोटे संगठन अस्तित्व में आये और अंत में, 1885 ई0 में, जातीयता एवं क्षेत्रीयता से ऊपर उठकर देशवासियों में व्यापक चेतना लाने एवं राष्ट्रीय समेकन को दृढ़ करने के उद्‌देश्य से दिसम्बर, 1885 में ''भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस'' की स्थापना हुई और 'कांग्रेस का इतिहास ही भारतीय नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास है'। कांग्रेस के उद्‌देश्य अत्यंत विस्तृत थे और वह एक राष्ट्रीय संस्था थी परन्तु फिर भी एक बात जो सामने आती है वह यह कि यह संस्था उच्च मध्यमवर्ग की संस्था थी, और जनसामान्य की उसमें कोई भागीदारी नहीं थी और न ही उसकी कार्यवाही भारतीय भाषाओं में ही होती थी यहां तक कि यह जनता के सानिध्य में तब आयी जब 1893 ई0 में काशी की नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना हुई[1]। इतना सब कुछ होते हुए भी एक स्वर से लेखकों एवं बड़े–बड़े इतिहासकारों तक ने इसी ढंग पर लिखा हैं और इस प्रकार के लेखन के दौरान हिंदी की उन अनेक छोटी–छोटी संस्थाओं, उनसे जुड़े व्यक्तियों एवं उनके द्वारा प्रकाशित पत्र–पत्रिकाओं का क्रमबद्ध इतिहास लिखा ही नहीं जो अपने–अपने क्षेत्रों में भाषा एवं लिपि को उद्‌देश्य बनाकर देशवासियों में चेतना लाने, उन्हें सचेत करने एवं उन्हें संगठित कर राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने हेतु प्रेरित कर रही थीं।

भारत में नवजागरण, जिसके लिए पुनर्जागरण शब्द अधिक प्रचलित हुआ, की चेतना के उद्‌गम और प्रसार का अध्ययन करने के पूर्व 'पुनर्जागरण' की प्रक्रिया एवं तत्कालीन परिस्थितियों पर विचार कर लेना समीचीन होगा। ''पुनर्जागरण'' जिसके लिये 'नवोत्थान' तथा अंग्रेजी में 'रेनेसॉ'[2] शब्द भी प्रयोग किये जाते हैं– 'पुनर्+जागरण' इन दो शब्दों के योग से बना है जिसका अर्थ है– 'पुनः जागना' अथवा 'पुनरूत्थान'[3]। इसका पारिभाषिक अर्थ है 'प्राचीन ज्ञान और संस्कृति को नये वातावरण और काल के परिप्रेक्ष्य में भविष्य के लिए परिवर्तित या रूपायित करना। एक नयी चेतना के आधार पर ऐसे भविष्य का निर्माण जिसमें मानव के विचार शक्ति की संभावनाओं पर पूरी आस्था रखी जाय'[4]। 'पुनर्जागरण' नितान्त नवीन जागरण जैसी प्रक्रिया नहीं है अर्थात् 'पुनर्जागरण' अनादि–निद्रित का एक बारगी जागरण नहीं अपितु इसके अन्तर्गत् पूर्व–जागरण और बाद में सुप्त का फिर से जागरण होता है। जो सदा से सुप्त होता है उसका जागरण होता है, पुनर्जागरण नहीं[5]। पुनर्जागरण पद किसी राष्ट्र अथवा जाति के पुनरूत्थान से सम्बन्धित हैं। प्राचीन का गौरवगान और उसकी पुनः स्थापना इस प्रवृत्ति की प्रमुख विशेषता है।

भारत में नवजागरण 19वीं शताब्दी में घटित होता दिखाई देता है जो देश की परतंत्रता का काल है। भारत, जो प्राचीन काल से ही सभ्यता और संस्कृति के शिखर पर आसीन था, किन्तु इस समय तक आते–आते उसी सभ्यता और संस्कृति के सर्वोच्च शिखर पर आसीन, ज्ञान गरिमा से मंडित और वीर कृत्यों के कारण सर्वपूज्य और जगत्वंद्य भारतवर्ष की अवस्था अत्यन्त क्षोभपूर्ण हो गई थी।[6] 18वीं शताब्दी यदि भारत के इतिहास का अंधकार युग था तो 19वीं शताब्दी, विश्व के शेष भागों के समान भारत के लिए भी आशा की शताब्दी थी। यह मानव इतिहास में सृजनात्मक चमत्कारपूर्ण शताब्दी थी।[7]

पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के संघात एवं पश्चिमी शिक्षा एवं ज्ञान–विज्ञान से सम्पर्क के फलस्वरुप भारतीयों में भी जागरण के चिन्ह दिखे जिसकी प्रथम प्रभा बंगाल में उद्‌घाटित हुई और उसके केन्द्र बिन्दु हुए राजा राममोहन राय और उनके द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज । नवजागरण की चेतना का सूत्रपात बंगाल से राजा राममोहन राय द्वारा होता है। राममोहन के पश्चात बंगाल में, एक बड़ी संख्या में प्रतिभाशाली विद्रोही उत्पन्न हुए, जिन्होंने बंगाल के सामाजिक और राजनीतिक विकास में एक नया जीवन प्रवाहित किया। किश्तोदास पाल और हरिश्चन्द्र मुखर्जी ने पत्रकला और राजनीतिक स्फूर्ति पैदा करने में, केशव चन्द्र सेन, रामकृष्ण परमहंस और विवेकानंद ने धार्मिक और आध्यात्मिक जागरण में, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने सामाजिक सुधारों के उद्बोधन में, मधुसूदन, दीनबन्धु

और बंकिम ने साहित्य में एवं किश्तोमोहन बनर्जी और महेन्द्रलाल सरकार ने सार्वजनिक जीवन में एक प्रकार का प्रकाश उत्पन्न किया वरन् सामाजिक और राजनीतिक वातावरण में उसने उज्ज्वल और क्रान्ति का स्फुरण किया।[8]

यदि पुनर्जागरण का आरम्भ 14वीं सदी में यूरोप में हुआ तो इसकी आखरी यात्रा 19वीं शताब्दी में, बंगाल में हुई और यह बंगाली बुद्धिजीवी वर्ग ही था जिसने ज्ञान की इस मसाल को इस उपमहाद्वीप में धारण किया।[9] बंगाल से यह महाराष्ट्र और मद्रास को गयी। आर्य समाज ने पश्चिमोत्तर प्रान्तों, विशेषकर गुजरात, पंजाब व आधुनिक उत्तर प्रदेश, को विशेष रूप से प्रभावित किया। भारतीय जनजागृति का मध्यान्हकाल आर्य–समाज के प्रचार का समय है जब इसने राष्ट्रीय स्तर ग्रहण किया। स्वामी विवेकानंद का तिरोभाव पुर्नजागरण का अन्त माना जा सकता है।

कलकत्ते के साथ पूरे उत्तर भारत में बनारस में इस जागरण की लहरें सबसे पहले आयीं। उस समय इस जागरण का नेतृत्व यहां भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने किया।[10] भारतेंदु जी ने जनजागृति लाने का जो उद्योग आरंभ किया उसमें पं0 बदरीनारायण चौधरी, पं0 प्रतापनारायण मिश्र, बाबू तोताराम, ठाकुर जगमोहन सिंह, लाला श्रीनिवासदास, पं0 बालकृष्ण भट्ट, पं0 केशवराम भट्ट, पं0 अम्बिकादत्त व्यास, पं0 राधाचरण गोस्वामी इत्यादि कई प्रौढ़ और शक्तिशाली लेखकों ने भारतेंन्दु के इस उद्योग में सहयोग किया।[11] भारतेन्दु के देहावसान के उपरान्त उनके सहयोगी यद्यपि उनके कार्यों को आगे बढ़ा रहे थे परन्तु इस कार्य में सर्वाधिक योग दिया काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने जैसा कि विश्वनाथप्रसाद मिश्र जी ने लिखा है कि ''भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगियों ने जो प्रस्तावना की थी उसी का उद्घाटन नागरीप्रचारिणी सभा के 50 वर्षों का इतिहास है।''[12]

नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना 16 जुलाई, 1893ई0 को काशी में हुई थी जिसके मूल में नागरी (हिंदी भाषा और नागरी लिपि) का प्रचार प्रमुख था। इसके स्थापनकर्ता त्रय पं0 रामनारायण मिश्र, बाबू शिवकुमार सिंह और बाबू श्यामसुंदरदास थे।[13] भारतेन्दु जी ने जनजागृति लाने हेतु जिन साधनों का आश्रय लिया था, नागरीप्रचारिणी सभा ने भी उन्हीं साधनों का आश्रय लिया। सभा की स्थापना के उपरान्त ही इस बात का उद्योग होने लगा कि भारतेन्दु जी के अनुयायी तथा अन्य सभी हिन्दी–हितैषी विद्वान सभा में सम्मिलित किये जॉय। इस प्रकार सभा में सबसे पहले भारतजीवन पत्र के तत्कालीन सम्पादक बाबू कार्तिक प्रसाद जी सम्मिलित हुए।[14] सभा को अपनी शैशवावस्था में ही सर्वश्री राधाकृष्णदास, महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी, राय बहादुर लक्ष्मीशंकर मिश्र, डॉ0 छन्नूलाल, रायबहादुर प्रमदादास मित्र, महामना मदनमोहन मालवीय, कालाकॉकर–नरेश राजा रामपाल सिंह, राजा शशिशेखर राय, कांकरौली–नरेश महाराज बालकृष्णलाल, अम्बिकादत्त व्यास, बदरी नारायण चौधरी, राधाचरण गोस्वामी, श्रीधर पाठक, ज्वालादत्त शर्मा (लाहौर), नंदकिशोर देव शर्मा, (अमृतसर), कुंवर जोधसिंह मेहता (उदयपुर), समर्थदान (अजमेर), डॉ0 ग्रियर्सन आदि अनेक लब्ध–प्रतिष्ठ विद्वानों ने पहले ही वर्ष में सभा की संरक्षकता और सदस्यता स्वीकार कर ली।[15]

जब 16जुलाई, 1893ई0 को सभा की स्थापना हुई तभी से देशवासियों में जनजागृति लाना इसके उद्देश्यों में शामिल था। जो प्रथम सूचना सभा के सन्दर्भ में प्रकाशित हुई थी उससे ही सभा के उद्देश्य स्पष्ट हो जाते है–

(क) इस सभा के सभासदों का मुख्य कर्तव्य यह है कि नागरी भाषा से अपनी उन्नति करें। नागरी जानने वाले इष्ट मित्रों से नागरी अक्षर और भाषा में पत्र व्यवहार करें। लोगों की रूचि इस ओर आकर्षित करें।

(ख) नागरी लेख लिखने का अभ्यास करें और उन्हें सामयिक पत्रों में प्रकाश करवावें।

(ग) इसके सभासद अन्य स्थानीय नागरीप्रचारिणी सभाओं से पत्र–व्यवहार द्वारा एकता और मित्रता करें।

(घ) यथामाध्यम दूसरे स्थानों में ऐसी सभा स्थापना करने का प्रयत्न करें।

(ङ) दूसरी भाषा के उत्तम एवं उपयोगी ग्रंथों को हिंदी में अनुवाद करें।

(च) परस्पर में मित्रता और ऐक्य बढ़ावें।[16]

सभा की स्थापनोपरान्त प्रथम चार बैठकों में केवल नियमादि का निर्माण हुआ परन्तु इसके उपरान्त निर्धारित विषयों पर पक्ष–विपक्ष का विधान करके वाद–विवाद हुआ करता था और विषय भी देशोन्नति संबंधी ही रखे जाते थे। सभा की पांचवीं बैठक में ही 'एकता' विषय पर श्री गोपालप्रसाद जी का व्याख्यान हुआ।[17] 18वीं बैठक में रामनारायण मिश्र ने ''इतिहास और उसके गुण'' शीर्षक लेख पढ़ा था। 23दिसम्बर, 1893ई0 की उन्नीसवीं बैठक में ''द्वारकानाथ टैगोर का जीवनचरित्र'' शीर्षक लेख पढ़ा गया। बाईसवें एवं तेईसवें अधिवेशन में ''हिंदी–हिंदू–हिन्दुस्तान'' विषय रखा गया और इस पर व्यापक चर्चा और वाद–विवाद हुआ। 24 मार्च, 1894ई0 को बाबू राधाकृष्णदास ने ''नागरीदास जी का जीवन चरित्र'' पढ़ा। 5मई 1894ई0 को बाबू कार्तिकप्रसाद जी ने ''छत्रपति शिवाजी का जीवन चरित्र'' पढ़ा।[18] इस प्रकार सभा में प्रारम्भ में ही विविध विषयों के अतरिक्त कई जीवन चरित्र पढ़े गये क्योंकि महान पुरूषों के जीवन–चरित्र का जनता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और उन्हें महान कार्य करने हेतु प्रेरित करता है जैसा कि नागरीप्रचारिणी पत्रिका ने लिखा है कि ''बड़े–बड़े मनुष्यों के जीवन का जनता पर कितना प्रभाव पड़ता है यह उनकी जीवनचर्य्या के पढ़ने से ही ज्ञात होता है और इसे इतिहास भी मानता है।''[19]

द्वितीय वर्ष में इस सभा के 13 नियमित, 4 अनियमित और 10 प्रबंधकारिणी सभा के अधिवेशन हुए। इन अधिवेशनों में भी 10 महत्वपूर्ण लेख पढ़े गये यथा– (1) पारसियों का संक्षिप्त इतिहास (2) दुमदार तारे (3) कालबोध

(4) स्वतंत्र सम्मति (5) काशी मानमंदिर (6) मनुष्य का कर्तव्य (7) उद्योग (8) स्वास्थ्य रक्षा (9) कविवर बिहारी लाल (10) राजा शिवप्रसाद की जीवनी।[20] लेखों के विषय के अवलोकन से ही स्पष्ट हो जाता है कि न केवल भाषा एवं साहित्य वरन् अन्योन्य विषयों का ज्ञान देशवासियों को कराना सभा का लक्ष्य था।

हिंदी भाषा में विविध ग्रंथों का अभाव देखकर उसके प्रणयन एवं संवर्द्धन निमित्त सभा ने हिंदी भाषा के इतिहास तथा व्याकरण बनाने हेतु व्याकरण के लिए सोने का और इतिहास के लिए चॉदी का पदक देने का विज्ञापन दिया और दोनों ग्रंथों का समय 31 जनवरी सन् 1896 ई0 रखा गया।[21] इस विज्ञापन का फल यह हुआ कि कई लोगों ने व्याकरण बनाने की सूचना दी और इतिहास विषय को हाथ में लेने का विचार कई सज्जनों ने किया।

हिंदी भाषा और नागरी लिपि को सर्वप्रिय बनाने और उसकी ओर जनता को अधिक से अधिक आकृष्ट करने हेतु सभा ने 1894ई0 से प्रतिवर्ष 10, 8, और 5, रू0 के तीन पारितोषिक नागरी अक्षर लिखने वाले बालकों में से सर्वोत्कृष्ठ प्रथम तीन बालकों को देने का निर्णय किया।[22] इसके प्रबन्ध के लिए प्रान्तिक शिक्षा–विभाग में प्रार्थना की गई और पत्र–व्यवहार हुआ। शिक्षा–विभाग ने सभा की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। सभा ने वर्नाक्यूलर स्कूलों में ही नहीं वरन् सब प्रकार के स्कूल–कालेजों में यह परीक्षा आयोजित करने का प्रयास किया। संवत् 1976 से यह परीक्षा शिक्षा–विभाग की आज्ञा से सब प्रकार के स्कूलों एवं कालेजों में आयोजित होने लगी। सं01993 तक कुल 43 वर्षों में सभा ने इस कार्य पर 1871रू0 का पुरस्कार देकर देशवासियों को जागृत करने का महान कार्य किया।[23]

1896ई0 से सभा ने 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन आरंभ किया जिसका भारतीय नवजागरण से घनिष्ठ संबंध है। सर्वसाधारण जनों की रूचि परिभाषित करने और उत्तमोत्तम विषयों में प्रवृत्ति उत्पन्न करवाने के लिए ही सभा ने 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन किया। पत्रिका का प्रकाशन क्यों आरंभ किया गया यह सभा के वार्षिक विवरण से ही स्पष्ट हो जाता है कि 'सभा की निर्णीत बातों को जनसाधारण तक पहुँचाना तथा हिंदी के सुयोग्य लेखकों के लेखों को सुरसिक पाठकों तक पहुँचाना और हिंदी में भाषातत्व, भूतत्व, विज्ञान, इतिहास आदि विद्या विषयक लेखों के अभाव की पूर्ति हेतु 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' का त्रैमासिक प्रकाशन आरंभ किया गया।[24] देशवासियों में चेतना लाना और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का शोध के द्वारा उत्थान इस पत्रिका के मूल में था।

सन् 1900ई0 से सभा ने हिंदी की प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का कार्य आरंभ किया जिसका भारतीय नवजागरण तथा हिंदी साहित्य के उत्थान से घना संबंध था। सभा के सभासदों का यह पूर्ण विश्वास था कि जब तक हिंदी के प्राचीन ग्रंथों की खोज का काम नहीं होगा तब तक भारत, विशेषकर उत्तर भारत की बहुत सी साहित्यिक तथा ऐतिहासिक बातें अंधकार में विलीन रहेगीं। यह विचार कर 22मई, 1894ई0 के एक प्रस्तावानुसार सभा ने इस कार्य हेतु एशियाटिक सोसाइटी, भारत सरकार, पंजाब और पश्चिमोत्तर प्रदेश की सरकारों से पत्र–व्यवहार किया। जिसका फल यह हुआ कि एशियाटिक सोसाइटी ने यह कार्य उसी वर्ष प्रारंभ कर दिया और प्रथम वर्ष में ही 600 उत्कृष्ठ प्राचीन ग्रंथों का विवरण प्रकाशित किया किन्तु आगे वह यह कार्य न कर सकी तब सभा ने पश्चिमोत्तर प्रदेश की सरकार की आर्थिक सहायता पर 1900ई0 से अपने प्रधान स्तंभ बाबू श्यामसुंदरदास के निरीक्षण में खोज विभाग की स्थापना की और यह कार्य प्रारंभ किया। पहले ही वर्ष में बनारस, रीवां, जयपुर, नागौद, लखनऊ, कालपी, आगरा और मथुरा में खोज का कार्य किया गया और 257 ग्रंथों के विवरण लिए गये जिनमें 169 ग्रंथों की रिपोर्ट की गई जो कि बारहवीं सदी से लेकर 19वीं सदी तक के थे।[25] सभा ने हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का कार्य व्यापक पैमाने पर किया जिसके फलस्वरुप हिंदी भाषा एवं साहित्य के साथ ही भारतीय इतिहास में कई नवीन अध्याय जुड़े।

जनवरी, 1900ई0 में इंडियन प्रेस, प्रयाग से, ''सरस्वती'' नाम की सचित्र हिंदी मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ और इसे प्रतिष्ठित करने का श्रेय नागरीप्रचारिणी सभा को ही है। भाषा एवं लिपि का परिष्कार एवं संवर्द्धन के साथ ही देशभाषा द्वारा देशवासियों को जागृत करने एवं उन्हें राष्ट्र निर्माण हेतु प्रेरित करना इस पत्रिका के मूल में था। वास्तव में सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही भारतीय इतिहास में एक नवीन युग का आरंभ हुआ और इस पत्रिका ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भी निर्णायक भूमिका निभाई।

जनजागृति लाने और सम्पूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में बॉधने के उद्देश्य से ही अक्टूबर, 1910ई0 में नागरीप्रचारिणी सभा में सभा द्वारा ही प्रथम '*हिंदी साहित्य सम्मेलन*' का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में देश के अग्रणी साहित्यकार, राजनीतिज्ञ, समाजसेवी, पत्रकार एवं विचारक सम्मिलित हुए और सम्पूर्ण राष्ट्र को कैसे एक सूत्र में बॉधा जाय और राष्ट्र की उन्नति कैसे हो, इस पर काफी वाद–विवाद हुआ और प्रस्ताव पास हुए। प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन में ही व्याख्यान देते हुए सभा के अग्रणी सभासद गोपालप्रसाद खत्री ने कांग्रेस के महत्व और उसमें कितनी जनसहभागिता है एवं साथ ही नागरीप्रचारिणी सभा एवं उसकी सहयोगी संस्थाएं जनता से कितनी जुड़ी थीं और किसका मत वास्तव में लोकमत है, को रेखांकित करते हुए कहा था ''हमारे देश के माननीय मुखिये देश की उन्नति के लिए बहुत वर्षों से उद्योग कर रहे हैं और इसी उद्देश्य से कांग्रेस की जातीय महासभा की स्थापना की गई है। यदि कांग्रेस के साथ–साथ नागरी–हिंदी के प्रचार का कुछ भी प्रयत्न किया जाता तो आज बहुत कुछ सफलता हो गई होती। आज दिन लाखों साधारण जन–किसान, व्यापारी, सौदागर और नौकरी–चाकरी करने वाले निम्न कोटि के लोग आज के समान कांग्रेस के महत्व को समझ गये होते और वे केवल जबानी जमा

खर्च ही नहीं वरन् कार्यतः आप की सहायता करते, आपके उस उत्तम कार्य से सहानुभूति दिखाते और इस प्रकार आपका मत यथार्थ लोकमत माना जाता।''[26]

इस प्रकार अपनी शैशवावस्था से ही सभा ने देशवासियों में चेतना लाने हेतु परीक्षा, प्रचार ,पुरस्कार, पदक और प्रमाणपत्र तथा व्याख्यान इत्यादि का सहारा लिया। देश की अशिक्षा दूर करने, सर्वसाधारण में ज्ञान–विज्ञान का लोक भाषा में प्रचार करने हेतु अक्टूबर, 1904ई0 से 'सुबोध–व्याख्यानमाला' आरंभ किया। हिंदी भाषा एवं साहित्य के साथ ही भारतीय इतिहास के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किया। सभा के इन समस्त कार्यों का समष्टिगत प्रभाव यह हुआ कि भारतीयों में चेतना आयी और वे राष्ट्रीय आंदोलन की ओर उन्मुख हुए क्योकि जागृति, सुधार और क्रांति इतिहास के तीन चरण हैं। जनता में पहले जागृति आती है, फिर सुधार होता है और अंत में जनता आंदोलनरत होकर किसी राष्ट्र के इतिहास में निर्णायक भूमिका निभाती है। काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने भी इसी प्रकार भारतीयों में जनजागृति लाकर भारतीय इतिहास में निर्णायक भूमिका निभायी।

संदर्भ सूची–

1. गोपाल, मदन, दिस हिंदी ऐंड देवनागरी, मेट्रोपोलिटन बुक कम्पनी लि0 दिल्ली, 1953, पेज 103.
2. रेनेसाँ शब्द फ्रांसीसी इतिहासकार मिशले (1796–1874ई0) ने गढ़ा था, और बुर्कहार्ट (1818–1897ई0) द्वारा वह ऐतिहासिक अवधारणा में विकसित हुआ। डिक्शनरी ऑफ फिलॉसफी, लंदन, पेज 270.
3. दास, श्यामसुन्दर, सं0. हिन्दी शब्दसागर, भाग 6, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं01986, पृष्ठ 3046.
4. दत्त, कार्तिक चन्द्र, राम मोहन राय, जीवन और दर्शन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1993ई0, पृष्ठ 355.
5. प्रसाद, मंगला, पुर्नजागरण युग और भारतेन्दु, श्रीरामकृष्ण पुस्तकालय वाराणसी, 1988 ई0 पृष्ठ 1.
6. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर उन्नीसवीं शताब्दी, साहित्य भवन प्रा0 लि0, इलाहाबाद, 1963ई0, पृष्ठ 25.
7. दत्ता, के0 के0, डॉन आफ रिनेसेंट इंडिया, एला0 पब्लि0, बॉम्बे, 1964, पेज 1.
8. ठाकुर, केशव कुमार, भारत में अंगरेजी राज्य के दो सौ वर्ष, मणि प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, 1959ई0 पृष्ठ–540.
9. दत्ता, सुनील के0, दि राज ऐंड दी बेंगाली पीपुल, फर्मा के0 एल0 एम0 प्रा0 लिमिटेड, कोलकाता, 2002, पेज58.
10. सिंह, ठाकुर प्रसाद, काशी की परंपरा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1957ई0 पृष्ठ 31.
11. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, ना0 प्र0 सभा, वाराणसी, 2022वि0, पृष्ठ–441.
12. शास्त्री, वेदब्रत, नागरीप्रचारिणी सभा का अर्द्ध–शताब्दी का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं0 2000वि0, वक्तव्य, पृष्ठ–1.
13. वहीं, पृष्ठ 5.
14. मिश्रबन्धु त्रय (कृष्णबिहारी, विपिन बिहारी, नवल बिहारी,) सं0 साहित्य सभालोचक भाग–1, अंक–1, जनवरी 1925,दयाल प्रिंटिंग वर्क्स,लखनऊ, 1925ई0, पृष्ठ– 6.
15. अर्द्ध–शताब्दी का इतिहास, पृष्ठ–6.
16. भारत जीवन पत्र, 14 अगस्त, 1993 ई0, भारत जीवन प्रेस,बनारस सीटी, पृष्ठ–7
17. ना0 प्र0 सभा का प्रथम वार्षिक विवरण, 1893–94, पृष्ठ–7.
18 ना0 प्र0 सभा का प्रथम वार्षिक विवरण, 1893–94, पृष्ठ 8–10.
19. ना0 प्र0 पत्रिका भाग–21, संख्या 5–6 1916ई0, पृष्ठ–98.
20. ना0 प्र0 सभा का द्वितीय वार्षिक विवरण 1894–95, चन्द्रप्रभा प्रेस कं0 बनारस, पृष्ठ–2.
21. ना0 प्र0 सभा का द्वितीय वार्षिक–विवरण 1894–95ई0, पृष्ठ–5.
22. ना0 प्र0 सभा का प्रथम वार्षिक विवरण, 1893–94ई0, पृष्ठ 7–8.
23. अर्द्ध–शताब्दी का इतिहास, पृष्ठ– 153.
24. ना0 प्र0 सभा का तृतीय वार्षिक विवरण 1895–96ई0, चन्द्रप्रभा प्रेस बनारस, (1896) पृष्ठ–6.
25. एनुअल रिपोर्ट ऑन दि सर्च फॉर हिंदी मैनुस्क्रीप्ट फॉर दि ईयर 1900. युनाइटेड प्राविंस गवर्नमेंट प्रेस, इजाहाबाद, पेज 1.
26. प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन, काशी का कार्य विवरण, भाग–2, हितचिंतक प्रेस, बनारस, 1911ई0, पृष्ठ–102.

भक्त अभिलाषा

रवि मोहन अवस्थी

टिकुली बनूँ राधिका मस्तक की
लटकौं बनि कै लट मञ्जुल सी.
पनही बनूँ पावन पायल की
पद पंकज में रहूँ नित्य कसी.
मुँदरी हरि हाथ की नाथ बनूँ
अंगुरी जिसमें रहै एक फँसी.
बंसुरी अथवा लकुटी मैं बनूँ
जो रहै हरि होठन-हाथ बसी.
काठ बनूँ उस ओखली का
जिससे हरि आप कभी बँध जाइये.
भाग सराहूँ बनूँ जल जो
करि आँसू सनेह कपोल बिठाइये.
श्याम बनूँ यदि रंग का मैं
कर काजल लोचन लोल लगाइये.
बाँस या राग बनूँ बंसुरी को
सनेह से होठ दबाय बजाइये.
बस के अमर भावना में, कवि कल्पना की
मोहक सुरों को मुरली में भर लाता है
वीणा-वादिनी की स्वर लहरी में झूम-झूम
'मोहन' वही जो जग-लय कर जाता है.
उसके स्वरों की अवशेष छाया प्राप्त कर
सारा विश्व कवि हो अमर गान गाता है
ऐसे जगमोहन से इस रवि मोहन का
नाम का सनेह का सदैव सत्य नाता है.

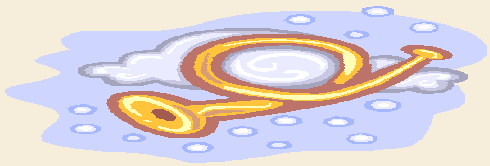

झंडा ऊँचा रहे हमारा

श्यामलाल गुप्त पार्षद

झंडा ऊँचा रहे हमारा
विजयी विश्व तिरंगा प्यारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।
सदा शक्ति बरसाने वाला,
प्रेम सुधा सरसाने वाला
वीरों को हरषाने वाला
मातृभूमि का तन-मन सारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।
स्वतंत्रता के भीषण रण में,
लखकर जोश बढ़े क्षण-क्षण में,
काँपे शत्रु देखकर मन में,
मिट जावे भय संकट सारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।
इस झंडे के नीचे निर्भय,
हो स्वराज जनता का निश्चय,
बोलो भारत माता की जय,
स्वतंत्रता ही ध्येय हमारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।
आओ प्यारे वीरों आओ,
देश-जाति पर बलि-बलि जाओ,
एक साथ सब मिलकर गाओ,
प्यारा भारत देश हमारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।
इसकी शान न जाने पावे,
चाहे जान भले ही जावे,
विश्व-विजय करके दिखलावे,
तब होवे प्रण-पूर्ण हमारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास)
आज का समाज	(लेख-संग्रह)
चिन्तन के धागों में कैकेयी	(शोध-ग्रन्थ)
सन्दर्भ : श्रीमद्वाल्मीकीय रामायाण	
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय
पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित